क़िसान और कम्यूनिस्ट

लेखक—
प्रो०-एन० जी० रंगा
एम० एल० ए० (सैन्ट्रल)

१९४७
शिवलाल अग्रवाल एन्ड कम्पनी लि०
आगरा।

प्रकाशक—

राधे मोहन अग्रवाल

मैनेजिंग डाइरेक्टर

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० लि०

आगरा।

प्रथमबार १९४७

मूल्य

दो रुपया

मुद्रक—

श्रीकिशन जैन

कैलाश प्रिंटिङ्ग प्रे

हाथरस।

भूमिका

प्रौफेसर रंगा की प्रस्तुत पुस्तक 'किसान और कम्यूनिस्ट पार्टी' हिन्दी में अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है। प्रौफेसर रंगा स्वयं एक कर्मठ कार्य कर्त्ता हैं और किसानों के हित के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। अर्थ शास्त्र के पंडित होने के अतिरिक्त उनका किसान सम्बन्धी ज्ञान कोरा किताबी नहीं है वरन् किसानों से अति निकटतम सम्पर्क के कारण ही वे कुछ नतीजों पर आए हैं।

ऐतिहासिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रो० रंगा ने भारतीय किसान आन्दोलन पर विश्लेषण पूर्ण जो प्रकाश डाला है उससे भारतीय कम्यूनिस्टों के जातके बंधनों का वास्तविक रूपसामने आगया है। यों तो मार्क्स के वैज्ञानिक भौतिकवाद (Dilectical Materialism) के अनुसार किसान वर्ग सफल क्रान्ति करने वालों की निम्नतम श्रेणी में आते हैं, अर्थात् वे प्रतिक्रियावादी हैं पर गत द्वितीय महायुद्ध के उपरांत कम्यूनिस्टों ने अपनी कैंचली बदली है और वैज्ञानिक भौतिकवाद की व्याख्या के अनुसार वे मार्क्स के उस उसूल का दूसरा ही अर्थ लगाते हैं वे किसानों को अब इतना बुरा नहीं समझते पर वैज्ञानिक भौतिकवाद के अनुसार ही अपने मूल सिद्धान्त का मन माना अर्थ वे लगा ही सकते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से भी मार्क्स के विचारों से हमारा मतभेद है। यूरुप के बड़े बड़े कल कारखानों की पृष्टिभूमि में मार्क्स ने अपने किसान सम्बन्धी मत का प्रतिपादन किया। उन्

प्रकाशक—
राधे मोहन अग्रवाल
मैनेजिंग डाइरेक्टर
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० लि०
आगरा।

प्रथमबार १९४७
मूल्य
दो रुपया

मुद्रक—
श्रीकिशन जैन
कैलाश प्रिंटिङ्ग प्रेस
हाथरस।

भूमिका

प्रौफेसर रंगा की प्रस्तुत पुस्तक 'किसान और कम्यूनिस्ट पार्टी' हिन्दी में अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है। प्रौफेसर रंगा स्वयं एक कर्मठ कार्य कर्त्ता हैं और किसानों के हित के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। अर्थ शास्त्र के पंडित होने के अतिरिक्त उनका किसान सम्बन्धी ज्ञान कोरा किताबी नहीं है वरन् किसानों से अति निकटतम सम्पर्क के कारण ही वे कुछ नतीजों पर आए हैं।

ऐतिहासिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रो० रंगा ने भारतीय किसान आन्दोलन पर विश्लेषण पूर्ण जो प्रकाश डाला है उससे भारतीय कम्यूनिस्टों के जातके बंधनों का वास्तविक रूपसामने आगया है। यों तो मार्क्स के वैज्ञानिक भौतिकवाद (Dilectical Materialism) के अनुसार किसान वर्ग सफल क्रान्ति करने वालों की निम्नतम श्रेणी में आते हैं, अर्थात् वे प्रतिक्रियावादी हैं पर गत द्वितीय महायुद्ध के उपरांत कम्यूनिस्टों ने अपनी कैंचली बदली है और वैज्ञानिक भौतिकवाद की व्याख्या के अनुसार वे मार्क्स के उस उसूल का दूसरा ही अर्थ लगाते हैं वे किसानों को अब इतना बुरा नहीं समझते पर वैज्ञानिक भौतिकवाद के अनुसार ही अपने मूल सिद्धान्त का मन माना अर्थ वे लगा ही सकते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से भी मार्क्स के विचारों से हमारा मतभेद है। यूरुप के बड़े बड़े कल कारखानों की पृष्टिभूमि में मार्क्स ने अपने किसान सम्बन्धी मत का प्रतिपादन किया। उन्हें

भारतीय किसानों का कुछ ज्ञान न था। मनुष्य मशीन नहीं है और न गणित के तथ्यों की भांति मार्क्स समस्याओं का हल ही सम्भव है। हमारे देश की संस्कृति आधारित है किसानों की संस्कृति-ग्रामीण संस्कृति पर जीवन का ध्येय कोरे अधिकारों का ही प्राप्त करना नहीं वरन् विश्व कल्याण के लिए इस प्रकार के समाज का निर्माण करना है जिससे राष्ट्र और परराष्ट्र का हित हो। ट्रिवेलियन के कथनानुसार 'कृषि' अनेक उद्योगों में से एक उद्योग ही नहीं है वरन जीवन का वह एक तरीका है जो मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यांकन की दृष्टि से अद्वितीय है और जिसका कोई स्थान नहीं ले सकता। किसान इसलिए केवल अन्नदाता ही नहीं है वरन वह आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित विश्व का त्राता भी है। कम्यूनिस्टों के प्रचार और कम्यूनिस्ट साम्राज्यवाद का शीराजा बिखर गया है। साम्राज्यवाद चाहे वह कम्यूनिस्टों का हो चाहे फासिस्टों का अथवा किसी अन्य वर्ग का निंदनीय ही है। हिन्दुस्तानी किसान अपने रूप को समझने लगे हैं और प्रो० रंगा की यह किताब प्यासे के लिए पानी के समान है।

आशा है कि प्रत्येक राजनीतिक कार्य-कर्त्ता और किसान समस्या में रुचि रखने वाला व्यक्ति इस महत्व पूर्ण पुस्तक को ध्यान से पढ़ेगा।

बल्का बस्ती आगरा
१८-५-१९४७

श्रीराम शर्मा

विषय-सूची ।

१.	किसान और कम्यूनिस्ट पार्टी	१
२.	कम्यूनिस्ट पार्टी के हमदर्दों के सम्बन्ध में	२८
३.	किसानों, कम्यूनिस्टों के नारों से सावधान	५१
४.	लैनिन और किसान	५६
५.	सोवियत शासन और किसान	७२
६.	कम्यूनिस्ट भी किसान विरोधी हैं	८७
७.	कम्यूनिस्टों का पक्षपातपूर्ण विचार	६४
८.	मार्क्स और बहुसंख्यक जनता	१००
६.	किसान और उनका भविष्य	१०६
१०.	उपसंहार	१३३

किसान और कम्यूनिस्ट पार्टी

(अखिल भारतीय किसान कांग्रेस द्वारा प्रचारित)

अध्याय १

आज जब हमारे देश में, देशभक्त किसानों और कम्यूनिस्टों द्वारा संचालित दो किसान-संगठन हैं, यह जांच करना बहुत आवश्यक हो जाता है कि क्या किसानों के हित की दृष्टि से कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्यों और उनके हमराहियों का विश्वास किया जा सकता है ? क्या वे सचमुच संसार के, विशेषकर इस देश के किसानों की उन्नति और भलाई के लिये कुछ कर सकते हैं ?

दोनों प्रतिद्वन्दी संगठनों का इतिहास—

जब तक सभी देश-सेवक किसान-वर्ग का नेतृत्व राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनैतिक सिद्धान्तों और देश के सच्चे हितों की दृष्टि से करते रहे, एक संगठन ही काफ़ी था। जब तक देशभक्त किसानों को यह विश्वास था कि किसान-वर्ग का संगठन सारी जनता की मौलिक मांग-आज़ादी के आधार पर चलाया और दृढ़ किया जा सकता है; और जब तक कम्यू-निस्ट भी देश की आज़ादी की मांग का समर्थन करते थे और कांग्रेस के ६०

वर्षों के त्याग और संघर्ष से प्राप्त राजनैतिक शक्ति और अस्त्र पर विश्वास करते थे, तब तक सभी प्रकार के लोगों को कांग्रेस में शरण मिली। लोगों ने कुछ समय के लिये अपने आदर्शों और नीति-सम्बन्धी अन्तर को भूलने का प्रयत्न किया और मिल जुल कर वे किसानों के क्षेत्र में साथ-साथ काम करते रहे।

देशभक्त किसान राष्ट्रीय संघर्ष के संयुक्त मोर्चे पर इतने तल्लीन हो गये कि उन्होंने अपने और कम्यूनिस्टों के बीच के अनेक मौलिक भेदों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। इस तरह की भूल कांग्रेस ने भी की और उसने अपनी परिषदों में कम्यूनिस्टों को आज़ादी से पैर जमाने दिया।

परन्तु दिसम्बर सन् ४१ में कम्यूनिस्टों ने भयंकर विश्वासघात किया। राष्ट्रीय कांग्रेस ने तो आज़ादी की घोषणा की शर्त पर युद्ध में सहयोग देने का वचन दिया था पर इन क्रान्तिकारी कम्यूनिस्टों ने कांग्रेस के विरुद्ध 'लोक-युद्ध' का नारा ऊँचा किया और स्वराज्य के लिये जन-आन्दोलन छेड़ने वाले कांग्रेस प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने सन् ४२-४४ के साम्राज्यशाही आक्रमणों के विरुद्ध राष्ट्रीय रक्षा के प्रयत्न में बाधाएँ डालीं और साम्राज्यशाही की पाँचवीं क़तार का काम किया। उन्होंने अत्याचार पूर्ण और तानाशाही गवर्नरी शासन का समर्थन किया और साम्राज्यवादी युद्ध में तन मन धन से सहायता दी। तभी से सभी देशभक्तों और आज़ादी के सिपाहियों की आँखें खुलीं।

देश के स्वतंत्रता-संग्राम में किसानों का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण भाग है और सरकार की बर्बरता और कम्यूनिस्टों के विश्वासघात से उनको ही सबसे अधिक कष्ट भोगना पड़ा। इसलिये उन्होंने अपने और कम्यूनिस्टों के सम्बन्ध पर और कम्यूनिस्टों के साथ अपने अनुभवों

पर फिर से गम्भीर विचार करना शुरू किया। यह परीक्षण अब बहुत ही आवश्यक हो गया था, क्योंकि कम्यूनिस्टों ने एकाएक किसानों की पीठ में छुरा भोंक दिया था और उनके बाहरी और भीतरी दुश्मनों को ताक़तवर बनाया था। कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ अपने सिद्धान्तगत विरोधों के प्रति जो लोग अबतक उदासीन थे, अब उन्हें बहुत गहरा धक्का लगा और कम्यूनिस्टों के देशद्रोही और नीचतापूर्ण आक्रमणों के कारण किसानों और उनके देशभक्त नेताओं ने इस आवश्यकता का अनुभव किया कि वे कम्यूनिस्ट पार्टी के राष्ट्र-विरोधी अभारतीय और ग़द्दार लोगों से किसान-आन्दोलन की जान बचायें। इस कटु अनुभव से ही सन् १९४२ में उस किसान-सभा के विरुद्ध किसान कांग्रेस का जन्म हुआ, जिसमें कम्यूनिस्ट भर गये थे और जिसका वे नकेल पकड़ कर नेतृत्व कर रहे थे। युवकों, विद्यार्थियों और मज़दूर-संघ के कार्य-कर्ताओं को भी इसी प्रकार के कटु अनुभव हुऐ, इसलिये हमारे देश में कम्यूनिस्टों द्वारा नियन्त्रित संस्थाओं से अलग किसान-कांग्रेस, तरुण-कांग्रेस और राष्ट्रीय मज़दूर-कांग्रेस आदि संस्थाओं का जन्म हुआ जो थोड़े ही समय में अपूर्व शक्तिशाली संस्थाये बन गई हैं।

किसान-कांग्रेस ही सबसे पुराना सङ्गठन था

सन् १९३५ में आचार्य रङ्गा और मोहनलाल गौतम आदि ने किसानों के लिये एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित करने का प्रयत्न किया और अप्रैल सन् १९३६ में लखनऊ में अधिवेशन करके एक संस्था बनाई जिसका नाम किसान-कांग्रेस रक्खा गया। इसका नाम किसान-कांग्रेस इसलिये रक्खा गया था कि किसान-सङ्गठन से यह आशा थी कि वह राष्ट्रीय महासभा के सामाजिक और राजनैतिक आदर्शों का अनुसरण करेगा। और इसका उद्देश्य था कि यह राष्ट्रीय

भारतीयों और देशभक्त किसानों को बहुत बड़ी शक्ति दे। सन् १९८३ तक इसका नाम किसान-कांग्रेस ही बना रहा। फैज़पुर में कांग्रेस अधिवेशन के समय किसान-कांग्रेस के सभापति के रूप में रंगा जी ने यह घोषणा की कि किसान और मजदूर-कांग्रेस आदि वर्ग-संगठनों का राष्ट्रीय कांग्रेस एक केन्द्र है और वे कांग्रेस रूपी गंगा में मिलने वाली उमड़ती हुई सहायक नदियाँ हैं और देश की आज़ादी के आन्दोलन को मज़बूत बनाती हैं।

सन् १९३६ में कम्यूनिस्ट और कांग्रेस सोशलिस्ट अखिल भारतीय किसान आन्दोलन में आये। इसके पहले कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बिहार, युक्तप्रान्त और उड़ीसा के किसान-आन्दोलन में काम कर रही थी। कम्यूनिस्ट हमारे संगठन के नाम, 'किसान-कांग्रेस' से सहमत नहीं हुये किन्तु उस समय किसी के ध्यान में यह बात न आई कि वे इस नाम को बदलने का प्रस्ताव इसलिये कर रहे थे कि वे डरते थे कि यदि एक बार किसानों में कांग्रेस शब्द प्रचलित हो गया तो राष्ट्रीय-कांग्रेस अधिक से अधिक शक्तिशाली हो जायगी और उनकी दाल नहीं गल पायेगी। इसलिये सन् १९३८ ई० में अखिल भारतीय किसान-संगठन का नाम किसान-सभा रक्खा गया। पर इस नये नाम को भी सब लोगों ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि कम्यूनिस्टों और कांग्रेस-समाजवादी दल वालों में सन् १९४१ तक भेद इतना बढ़ गया कि कॉ०स० द० वालों ने एक प्रतिद्वन्दी किसान-सभा बना ली और उस दल से अलग हो गये। इस प्रकार नये नाम (किसान-सभा) के भीतर लोग केवल तीन साल तक ही साथ रह सके और रंगा आदि किसान कांग्रेस-वादियों ने भी किसान-सभा छोड़ कर अपना पुराना प्रेरणा-पूर्ण नाम (किसान-कांग्रेस) अपना लिया। फलतः आज वर्ग-चेतना से पूर्ण साम्राज्य विरोधी और देशभक्त किसानों का अपना

स्वतंत्र संगठन किसान-कांग्रेस है जो मास्को एण्ड कम्पनी के नियंत्रण से बिलकुल स्वतंत्र है ।

किसान-मजदूर राज के आदर्श पर हमारा मौलिक भेद

हम लोगों में से जो लोग किसान-कांग्रेस के आदर्शों में विश्वास करते हैं, किसानों में किसान-मज़दूर राज की स्थापना की महत्वाकांक्षा का प्रचार करते रहे हैं किन्तु कम्यूनिस्ट किसानों को किसी ऐसे आदर्श पर लाने की बात नहीं करते ।

फ़ैज़पुर अधिवेशन के समय, जब किसान-संगठन का विधान स्वीकृत किया जा रहा था, हमने यह सुझाव पेश किया कि किसान-आन्दोलन का उद्देश्य और लक्ष्य देश की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद किसान मज़दूर राज की स्थापना करने का बनाया जाय। किन्तु इसे संगठन के अन्तर्गत कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों ने स्वीकार नहीं किया । किसान-आन्दोलन के मौलिक राजनैतिक उद्देश्य के सम्बंध में हमारा कम्यूनिस्टों से जो मतभेद हुआ, उससे हमारी आंखें खुलीं और हमने सोचा कि शायद ये लोग किसानों के विरुद्ध वे ही चालें चलें जो रूस में चले थे। हम आशा करते थे कि शायद हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट किसानों की समस्याओं का और क्रान्तिकारी किसान-राष्ट्रीयता का कोई हिन्दुस्तानी हल निकालें, जो उनकी परिस्थितियों के बिलकुल अनुकूल हो। किन्तु हमारी यह आशा बिलकुल भ्रान्त और निर्मूल साबित हुई। इसलिये हम लोगों ने निश्चय किया कि किसान-आन्दोलन किसान मज़दूर राज्य को अपना लक्ष्य बनाने का वचन दे, जिससे कम्यूनिस्टों को यह अवसर न मिले कि वे किसान-आन्दोलन को केवल सर्वहारा की क्रान्ति लाने के लिये इस्तैमाल करें, जैसा उन्होंने रूस में किया था ।

गया-अधिवेशनः—

किसानों के सामने किसान मज़दूर राज का आदर्श

अप्रैल सन् १६३६ ई० में गया अधिवेशन के अवसर पर हमने इस बात पर ज़ोर दिया कि देश की आज़ादी प्राप्त कर लेने पर किसान-संगठन किसान-मज़दूर राज के लिये लड़ने की ज़िम्मेदारी ले। फिर कुछ कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों ने इसे स्वीकार करने से इनकार किया, क्योंकि उनके पाठ्य-ग्रन्थों में सर्वहारा की तानाशाही का आदर्श था। हम इस बात पर डटे रहे कि यदि किसान स्वराज्य के लिये लड़ते हैं तो पूँजीवादी या सर्वहारा* की तानाशाही के लिये नहीं; वरन् समस्त श्रमिक जनता अर्थात् किसान मज़दूरों के प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये जिसमें प्रधान हाथ किसानों का हो। अन्त में हमारी विजय हुई। अधिवेशन ने यह प्रस्ताव पास किया कि देश के स्वराज्य-संग्राम में भाग लेने के लिये किसान-संगठन किसानों को प्रोत्साहित करे और स्वराज्य प्राप्त करके किसान मज़दूर राज की स्थापना की जाय।

किसान-मज़दूर राज के आदर्श से कम्यूनिस्ट क्यों बौखला उठे

इस घटना-क्रम से निराश कम्यूनिस्ट बहुत दुःखी हुये। क्योंकि गया प्रस्ताव का अर्थ यह था कि स्वराज्य प्राप्त करने के बाद देश की जनता एक वर्ग (सर्वहारा) का अधिनायकत्व न स्वीकार करके किसान मज़दूर राज की स्थापना करेगी। इसका यह भी अर्थ था कि रूस के प्रतिकूल हिन्दुस्तान की किसान जनता मनोवैज्ञानिक और संघ रूप से

---

* शहरों की बड़ी-बड़ी मिलों और कारखानों में काम करने वाला वह मज़दूर वर्ग जिसके पास श्रम के अतिरिक्त और कोई पूंजी या संपत्ति नहीं है।

कम्युनिस्ट पार्टी का विरोध करने को तैयार होगी जिसका लक्ष्य सर्वहारा की तानाशाही स्थापित कर किसानों को राजनैतिक ताक़त से बाहर रखने का है।

इसका यह निश्चित अर्थ था कि किसान जनता शिक्षा और संगठन द्वारा कम्यूनिस्टों या पूँजीपतियों के इस प्रयत्न का पूर्ण विरोध करने के लिये अपने को तैयार करेगी कि उसके ऊपर किसी दूसरे वर्ग का शासन लादा जाय। इस प्रस्ताव से किसानों के सामने राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता का बोध हुआ और उनका निश्चय भी दृढ़ हुआ कि वे स्वतन्त्र भारत के आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक कार्यों और संगठनों के साथ (उनकी आधीनता में नहीं) सच्ची शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करें। हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्टों को किसान-राजनीति का यह विकास बिलकुल अप्रिय लगा और वे इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि हमारे प्रयत्नों को नष्ट करने का उन्हें कब अवसर मिले।

हमारी स्वाधीनता-दिवस की प्रतिज्ञा में किसान-मज़दूर-राज्य का आदर्श क्यों नहीं सम्मिलित किया गया?

सन् १९४० का स्वतंत्रता-दिवस (२६ जनवरी) आया और राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रतिज्ञा-पत्र में कुछ परिवर्तन किये। किन्तु कम्यूनिस्टों और कांग्रेस-समाजवादियों ने सन् १९३८ की ही प्रतिज्ञा को दुहराने का निश्चय किया। किसान-कांग्रेस वालों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि राष्ट्रीय-संग्राम के आरम्भ में हर एक सच्चे कांग्रेसवादी के लिए उचित है कि—वह किसानों को विश्वास दिलावे कि जिस आज़ादी के लिये हम लड़ रहे हैं वह किसानों और मज़दूरों की आज़ादी होगी। परन्तु कट्टरवादी कम्युनिस्टों के लिये यह असह्य था। राष्ट्रीय

नेताशाही ने अहिंसा और रचनात्मक कार्यक्रम पर जो नया जोर दिया था, उसके विरुद्ध कम्यूनिस्ट बड़ा शोर मचा रहे थे। किन्तु किसान जनता को यह विश्वास दिलाने की तकलीफ़ वे गवारा नहीं कर सकते थे कि किसान जिस आज़ादी के लिये लड़ने वाले हैं, उसमें उन्हें सच्ची ताक़त मिल सकेगी। इसलिये कम्यूनिस्टों ने अपने साथियों को आज्ञा दी कि किसान-मज़दूर राज की स्थापना करने के हमारे विश्वास और निश्चय में वे हमारा साथ न दें। फिर भी देशभर में हमारे किसान-संगठनों ने अपने उपर्युक्त आदर्श की घोषणा की।

यह कम्यूनिस्टों के लिये असम्भव था

मार्च १९४० में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन रामगढ़ में और किसान-संगठन का अधिवेशन पलासा में हुआ। कम्यूनिस्टों की नीति जनता के सामने खुली और उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद और भारतीय पूंजीवाद से देश को आज़ाद करने के लिये विशुद्ध सर्वहारापथ के अनुसरण का निश्चय किया। उपनिवेशों में किसानों की क्रान्ति कराने और सारी श्रमिक जनता का राज्य स्थापित करने के इनके वादे उसी प्रकार झूठे सिद्ध हुये, जैसे रूस में सन् १९०१ से १९१७ तक के किसानों को दिये हुये वचन झूठे हुये थे। आज़ादी के लिये कम्यूनिस्टों का रास्ता केवल सर्वहारा का रास्ता था। हिन्दुस्तान की विशाल किसान जनता के लिये उसमें कहाँ स्थान मिल सकता था? मार्क्स ने पेरिस कम्यून के दिनों (१८७० ई०) में यही सोचा था कि किसान-जनता केवल सर्वहारा की चेरी रहे। लेनिन की भी सन् १९१७ से २० तक यही धारणा थी, स्तालिन ने सन् २६ के बाद इसी प्रकार उनका उपयोग किया और चीन के कम्यूनिस्ट आज वही कर रहे हैं। हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट भी चाहते हैं कि किसान केवल पिछलग्गे रहें और

ार्वहारा का नेतृत्व स्वीकार करें, अपने लिये नहीं वरन् सर्वहारा के लेये शक्ति लाने का उद्योग करें और बाद में कुछ आर्थिक रिआयतों के लिये सर्वशक्तिमान सर्वहारा की प्रार्थना करें जिसका नेतृत्व कम्यूनिस्टों के हाथ में हो ।

यह उन सब लोगों के लिये खुली चुनौती थी जो किसान-वर्ग के थे और जिनको सर्वहारा की तानाशाही के दिनों में रूस में किसानों की दयनीय अवस्था का ज्ञान था और इसलिये उन्होंने भारतीय किसानों को उस दयनीय स्थिति से बचाने का निश्चय किया जिसमें रूस के किसान पड़े थे और निश्चय किया कि किसानों को निश्चित और पर्याप्त शक्ति दी जाय। हमने कम्यूनिस्टों की चुनौती स्वीकार की।

पलासा-अधिवेशन में गया-प्रस्ताव ही दुहराया गया

हम चाहते थे कि पलासा में गया का किसान-मजदूर राज का प्रस्ताव दुहराया जाय। कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों ने इसका बुरी तरह विरोध किया। स्वामी सहजानंद सरस्वती ने भी कम्यूनिस्टों की सहायता का प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ हुआ। किसान-कांग्रेस-वादियों ने अपने नीतिपूर्ण बहुमत से फिर गया-प्रस्ताव को पास कराया और अपने सिद्धान्तों की रक्षा की।

नीतिपूर्ण बहुमत का तात्पर्य यह है कि सदस्यों या प्रतिनिधियों (डेलीगेटों) की संख्या के बावजूद उस प्रान्त के प्रतिनिधि दूसरे प्रान्तों के प्रतिनिधियों में संख्या में बढ़ जाते हैं, क्योंकि दूर-दूर प्रान्तों के लोग प्राय: कम ही आते हैं।

स्वतंत्र भारत में किसान–मजदूर राज्य

इस प्रकार यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जारहा था कि किसान कांग्रेसवादी, जो किसान वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे और किसानों के

हितों का विशेष ध्यान रखते थे, कम्यूनिस्टों के साथ काम नहीं कर सकते। क्योंकि कम्यूनिस्टों का विश्वास किसान विरोधी और एक वर्गीय सर्वहारा की तानाशाही में था। इन परस्पर विरोधी आदर्श वालों के लिये किसान-मंच से एकसी आस्था और ईमानदारी से किसान हित के लिये काम करना असम्भव था, और कम्यूनिस्टों तथा किसान-वादियों में कोई समझौता हो नहीं सकता था किन्तु फिर भी वे अगस्त सन् ४२ तक साथ-साथ काम करते रहे। आखिर इसका कारण क्या था ?

पहली बात तो यह थी कि पलासा अधिवेशन के दो महीने के भीतर ही किसान-कांग्रेसवादी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। आचार्य रङ्गा भी अप्रैल के पहले हफ्ते तक जेल में पहुँचा दिये गये। दूसरा कारण यह था कि देश की आज़ादी के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विशाल आन्दोलन चलने वाला था जिसमें पूर्णतः भाग लेने के लिए किसान प्राणपण से तैयार थे। इसलिए यह समय ऐसा नहीं था जब स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर राजनैतिक नीति के भावी विरोध की सम्भावना पर कम्यूनिस्टों से लड़ा जाता।

किसान कांग्रेस वादियों ने महसूस किया कि जब तक देश साम्राज्य-वादियों के चंगुल में रहता हैं तब तक किसानों की किसी समस्या का हल होना असम्भव है। तबतक उनकी राजनैतिक आवश्यकताओं और महत्वा-कांक्षाओं को कौन कहे उनकी साधारण मांगेंभी नहीं पूरी हो सकतीं। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के २॥ वर्ष के समय में भी क्या किसानों को अनेक निराशाओं का सामना नहीं करना पड़ा था ? और इन सबका कारण यह था कि गवर्नरों और वाइसराय के विशेषाधिकारों की आड़ में अनेक स्थिर-स्वार्थी वर्गों को अड़ंगा डालने का अवसर मिल जाता था। इसलिये जब तक कांग्रेस समाजवादी-दल और कम्यूनिस्ट पार्टी के लोग साम्राज्यवाद के विरुद्ध और देश की आजादी के लिए दृढ़ता-

पूर्वक लड़ने के लिए उत्सुक थे, किसान कांग्रेसवादियों ने अपना यह कर्तव्य समझा कि किसानों और अन्य राष्ट्रीय मोर्चों पर साम्राज्य-विरोधी शक्तियों के साथ संयुक्त मोर्चा क़ायम रक्खा जाय। इसलिये धैर्य और देशभक्ति पूर्वक भारत-माता के हितों को ध्यान में रखकर वे कम्यू-निस्टों के साथ काम करते रहे।

हमारा ध्येय था-अखिल भारतीय जन-संघर्ष

सन् १९४०—४१ में किसान कांग्रेसवादी जनता और राष्ट्रीय कांग्रेस के ऊपर ज़ोर डालते रहे कि सारे देश में स्वराज्य-प्राप्ति के लिये एक अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया जाय। आन्दोलन चलाने में राष्ट्रीय कांग्रेस की हिचकिचाहट पर हम लोग असन्तुष्ट थे और इन सब बातों में कम्यूनिस्ट पार्टी को भी उतना ही उत्साह था। किसान-कार्यकारिणी और स्थायी समिति में तो उन्होंने यहाँ तक पास करा लिया कि राष्ट्रीय कांग्रेस का आन्दोलन न आरम्भ करना एक प्रकार से देश की आजादी के प्रति विश्वासघात करना है। यह देश के प्रमुख राजनैतिक दल की घोर निन्दा थी और यह कम्यूनिस्ट पार्टी का पागलपन था। हम लोगों ने उस समय यह महसूस नहीं किया कि उनका सारा साम्राज्य-विरोधी उत्साह केवल उनकी एक चाल थी जिससे वे अधिक से अधिक देशभक्तों को कांग्रेस से अलगाकर आजादी के लिए सबसे अधिक लड़ने वाली संस्था को बदनाम करना चाहते थे। उसके बाद ही हमने देखा कि उन्होंने किस प्रकार व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन को असफल करने के घृणित परन्तु संगठित प्रयत्न किये।

इसलिए अब हम उनके जाल में नहीं पड़ सके और किसान आन्दोलन द्वारा व्यक्तिगत सत्याग्रह की निन्दा भी हम नहीं सुन सकते थे। फलतः कम्यूनिस्ट पार्टी की कांग्रेस-विरोधी नीति के बावजूद, व्यक्तिगत

सत्याग्रह आन्दोलन बढ़ता गया और एक संगठित रूप में जनान्दोलन बन गया। लगभग ७५,००० चुने हुये कांग्रेस जनों ने सत्याग्रह किया और निर्भयता पूर्वक साम्राज्यवादी युद्ध का विरोध किया और निश्चय किया कि देश में साम्राज्य-सत्ता को समाप्त करेंगे। हमें इस बात का अभिमान है कि हमने ऐसे शिक्षा-पूर्ण अनुशासित और उत्साह-वर्धक आन्दोलन में भाग लिया, जब कि कम्यूनिस्ट पार्टी जी जान से इसका विरोध कर रही थी। इससे हमारी आंखें और भी खुलीं और हमारा यह विश्वास दृढ़ हो गया कि ये हमारी आज़ादी के लिये लड़ने वाली प्रमुख संस्था कांग्रेस के प्रति बिलकुल वफ़ादार (सच्चे) नहीं हैं।

नवम्बर सन् १९४१ में कम्यूनिस्टों का पक्ष-परिवर्तन

जर्मनी द्वारा रूस के ऊपर आक्रमण होने के पूरे छः महीने बाद तक कम्यूनिस्ट पार्टी द्वितीय महायुद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध समझती रही और राष्ट्रीय कांग्रेस की युद्ध में असहयोग की नीति से सहमत रही और हिन्दुस्तान की आज़ादी की मांग करती रही। यह बात सच है कि रूस पर जर्मनों के नीचतापूर्ण आक्रमण से हम अत्यन्त क्षुब्ध थे और हम यह चाहते थे कि रूस की जनता को हम कोई ठोस सहायता पहुँचा सकते, विशेषकर इसलिये कि वे कुछ महान प्रेरणापूर्ण और प्रगतिशील सामाजिक प्रयोग कर रहे थे और श्रमिक जनता की सामाजिक उन्नति में उन्होंने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की थी। परन्तु परतंत्र हिन्दुस्तान कर ही क्या सकता था? गुलाम हिन्दुस्तानी—अगर उनके पास सहायता करने के लिये कोई चीज़ हो भी तो—केवल उन्हीं साम्राज्यवादियों के मार्फ़त सहायता कर सकते थे, जिन्होंने उनकी नागरिक स्वतंत्रता छीन ली थी? वे उन साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग कैसे

कर सकते जिन्होंने उन्हें (हिन्दुस्तानियों) यह सोचने का भी अधिकार नहीं दिया था कि वे युद्ध में भाग लें या नहीं। इसलिये हम सब लोग इस विषय पर एकमत थे कि केवल स्वतंत्र भारत फ़ासिस्ट शक्तियों के विरुद्ध रूस की सहायता करने की स्थिति में हो सकता था।

जिस प्रकार चीन के कम्यूनिस्टो ने यह निश्चय किया था कि विश्व-प्रजातंत्र के तथा रूस के हितों की रक्षा केवल जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने से ही हो सकती है, हालांकि रूस और जापान में उस समय मित्रता थी। उसी प्रकार हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्टों ने भी निश्चय किया कि वे फ़ासिज़्म के विरुद्ध अपना मोर्चा अंग्रेजी साम्राज्यवाद से लड़कर और राष्ट्रीय स्वतंत्र संग्राम में सहयोग करके मजबूत रक्खेंगे जबकि स्टालिन ने जर्मनी के विरुद्ध अंग्रेजों को अपना सहायक मान लिया था।

किन्तु एकाएक कम्यूनिस्ट पार्टी ने अपना रङ्ग बदल दिया और नवम्बर-दिसम्बर सन् १९४१ में अपने नये सिद्धान्त की घोषणा कर दी कि यह युद्ध जनयुद्ध है। ऐसा क्यों हुआ? इसके लिये अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं।

१—कम्यूनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने यह मांग रक्खी कि सोवियत रूस की नीति और स्वार्थों के अनुकूल ही नीति अख्तियार की जाय।

२—कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल लंदन के दफ़्तर के एक एजेन्ट ने देवली में नजरबन्द और बाहर के हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्टों से सम्बन्ध स्थापित किया और उनको मास्को की नीति पर चलाया। जब लंदन से मास्को तानाशाही की हिन्दुस्तानी शाखा (C. P. I.) में डाक पहुँची तो हैरी पालित आदि के विवेचनों से यह चाल और भी सफल हुई।

इसका रहस्य कम्यूनिस्ट पार्टी ही जानती है पर क्या वह इसे प्रकट कर सकेगी ? अस्तु, इस विचित्र भारत-विरोधी और साम्राज्यवाद-समर्थक नीति को उचित सिद्ध करने के लिये कम्यूनिस्ट केवल यह कह सकते थे कि संसार की समस्त जनता का कर्तव्य है कि वे संसार के मजदूरों और किसानों के पितृदेश रूस की रक्षा के लिये दौड़ पड़ें और यदि रूस को सहायता मिल सके तो इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि यह सहायता उसी साम्राज्यवादी सत्ता को दी जा रही है जिसने उपनिवेशों और परतंत्र देशों के साथ फासिस्त शक्तियों से भी अधिक घृणित व्यवहार किया है।

यदि साम्यवादी स्तालिन साम्राज्यवादी चर्चिल के साथ सहयोग कर रहे थे तो हिन्दुस्तानी देशभक्त भी साम्राज्यवादी चर्चिल से सहयोग कर सकते थे क्योंकि रूस को सहायता देना ही उनका मुख्य कर्तव्य था।

इस आपत्ति का, कि ऐसी सहायता से हिन्दुस्तान और दूसरे उपनिवेशों पर अंग्रेज साम्राज्यवादियों का अधिपत्य और मजबूत होगा और उनका शोषण बढ़ जायगा, कम्यूनिस्टों के पास एक पका पकाया जवाब था कि विजयी और सुरक्षित रूस, उपनिवेशों और परतंत्र देशों की जनता का सबसे बड़ा सहायक और समर्थक होगा और चर्चिल को जो रूस की मुट्ठी में आता जारहा था, इस बात के लिये बाध्य करेगी कि साम्राज्यवाद का खात्मा कर दिया जाय। परन्तु जब सोवियत् रूस ने परस्पर सहायक समझौते (Mutual Assistance Pact) द्वारा ब्रिटेन को यह आश्वासन दिया कि वह २० वर्ष तक अंग्रेजी साम्राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करेगा, तो कम्यूनिस्टों की ये बड़ी-बड़ी बातें भी बन्द हो गईं।

कम्यूनिस्ट मास्को का मुँह देखते हैं

खैर, संसार के और देशों के कम्यूनिस्टों की तरह हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्टों ने भी मास्को के अन्धानुसरण की नीति का पालन किया। उन्होंने इस बात की चिन्ता नहीं की कि उपनिवेशों और परतन्त्र देशों की राष्ट्रीय भावना पर जिन्होंने अपने साम्राज्य विरोधी मोर्चे को बहुत विकसित कर लिया था, इसका कैसा घातक प्रभाव पड़ेगा। वे लोग स्वयं उन राजनैतिक दलों में थे जिन्होंने उपनिवेशों की जनता को साम्राज्यवादियों के विरुद्ध संघर्ष के पथ पर आगे बढ़ाया था क्योंकि साम्राज्यवादी शक्तियां स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के लिये युद्ध का नारा लगाते हुये भी शक्ति से चिपके रहने के लिये शासन की बागडोर को कसती जा रही थीं। परन्तु अब ये कम्यूनिस्ट अपने पुराने उत्तरदायित्व को भूल गये थे। वे रूस के सत्प्रभाव से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवादी देशों से यह आश्वासन न पा सके कि वे लोग विजयी होने के बाद तुरन्त साम्राज्य को खत्म और उपनिवेशों की जनता को स्वतन्त्र कर देंगे। और न तो स्तालिन ने ही साम्राज्यवादी देशों को उपनिवेशों के प्रति अधिक उदार और लोकतांत्रिक नीति ग्रहण करने के लिये दबाने का प्रयत्न किया। इसके विपरीत रूस ने चुपचाप तथोक्त संयुक्त राष्ट्रों के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया और यह तो सभी जानते हैं कि तथाकथित अटलांटिक घोषणापत्र का चौथा अंश स्पष्ट रूप से उपनिवेशों के सच्चे हितों के विरुद्ध था। जब चर्चिल ने हिन्दुस्तान को अटलांटिक चार्टर की घोषणा के बाहर रक्खा तो भी स्टालिन या उनके अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ ने उसके विरुद्ध चूँ भी नहीं किया। इन सब बातों के होते हुये भी हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी ने हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय संघर्ष को त्याग कर और अपने साम्राज्य विरोधी साथियों को अकेला छोड़कर हिन्दुस्तान के

हितों के प्रति विश्वासघात किया और सोवियत रूस के प्रति अपनी वफ़ादारी को अधिक महत्व दिया। उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की तरह अंग्रेजों के युद्ध-प्रयत्नों के प्रति निष्पक्षता का रुख़ भी नहीं अख़्तियार किया। उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद का खुले दिल से सहयोग किया और वे चाहते रहे कि और लोग भी धोखा खायें जैसे वे स्वयं इस विचित्र सिद्धान्त को मानकर धोखा खाये थे कि इस प्रकार वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विश्वसाम्यवाद और सोवियत रूस के पंजे में कैद कर रहे हैं—

किसान कांग्रेस वादियों ने उनका साथ क्यों नहीं दिया ?

यह तो बिलकुल स्पष्ट था कि किसान कांग्रेसवादी कभी भी कम्यूनिस्टों की नीति का अनुसरण नहीं कर सकते थे। उनके लिये तो हिन्दुस्तान की आजादी की समस्या सबसे बड़ी मौलिक और तात्कालिक समस्या थी और दूसरे उत्तरदायित्व केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही आ सकते थे। उन्हें सोवियत् रूस प्रिय है पर हिन्दुस्तान उससे भी ज़्यादा प्रिय है। सोवियत् जनता की स्वतंत्रता की रक्षा करना उनका पवित्र कर्तव्य है परन्तु हिन्दुस्तान की जनता के लिये स्वतंत्रता की प्राप्ति, जो सबसे बड़े आक्रमिक राष्ट्र इङ्गलैण्ड द्वारा १५० वर्षों से छिनी हुई है, उनके लिये और भी पवित्र है। उन्होंने सर्वदा इस बात का अनुभव किया है कि जब तक भारतीय जनता अंग्रेजी साम्राज्यवाद से स्वतंत्र नहीं हो जाती उनकी राजनैतिक या आर्थिक उन्नति बिलकुल असम्भव है किसान और मजदूर जनता के लिये आर्थिक और राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के कार्य को आरम्भ करने के पहले राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेना अनिवार्य है। गुलाम हिन्दुस्तान और दूसरे उपनिवेशों के लिये यह आवश्यक है कि पहले वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करें। अन्तर्राष्ट्रीय

समस्याओं को अपना प्रधान कार्यक्रम बनाना तो बाद में ही सम्भव है। अपने देश के प्रति तथा साम्राज्य-विरोधी और प्रगतिशील राष्ट्रीय हितों के प्रति विश्वासघात करके ही अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को प्रमुख स्थान दिया जा सकता था। पर हिन्दुस्तानियों का जिन्हें गुलाम समझा जाता है, अपना निजी पितृदेश भी है। उनकी हालत १९ वीं सदी के इङ्गलैण्ड के मजदूरों की तरह थी जो सेटिलमेण्ट एक्ट से अपने गाँवों में ही कैद थे और इस क़ानून के टूटने पर ही स्वतंत्र मजदूर बन सकते थे।

इसलिये हिन्दुस्तानियों को पहले स्वतंत्र होना तथा साम्राज्यशाही आधिपत्य से अपने देश को मुक्त करना है, और तभी वे इस बात का निश्चय कर सकते हैं कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति वफादार हों या समाजवादी पितृ-देश रूस के प्रति। अतएव हम लोग अपने राष्ट्रीय पक्ष का त्याग करके या उपनिवेशों के स्वतन्त्रता संग्राम के साथ गद्दारी करके कम्यूनिस्ट पार्टी का साथ न दे सके। इस समय श्रीमती भारतदेवी रंगा, प्रधान मंत्रिणी अखिल भारतीय किसान संङ्गठन ने हमारा नेतृत्व किया।

हमने केवल कुछ शर्तों पर ही सहयोग दिया

किसान स्थायी समिति के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर कम्यूनिस्टों ने अपनी 'लोकयुद्ध' की नीति पेश की और यह प्रयत्न किया कि किसान-आन्दोलन के नाम पर जनता उसे स्वीकार करे। किसान-कांग्रेस वालों ने उसका घोर विरोध किया। दोनों दलों में एक समझौता हुआ जिसका आधार यह था कि यह युद्ध लोकयुद्ध हो सकता है यदि केन्द्र में पूर्णतः उत्तरदायी और प्रजातंत्रात्मक राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जाय, प्रान्तों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डल स्थापित हो और हिन्दुस्तान

की राष्ट्रीय स्वतंत्रता की स्वीकृति के आधार पर ही हम इस दृष्टिकोण को अपना सकते थे। इस समझौते में किसान-काँग्रेस वालों की सच्ची विजय थी। सच्चे किसानों और उनके नेताओं ने देश के राष्ट्रीय हितों के प्रति अपने अमिट प्रेम का परिचय दिया और कम्यूनिस्टों से धोखा न खा सके या सोवियत् रूस के प्रति अपने प्रेम के कारण राष्ट्रीय कर्तव्य के पथ से विमुख न हो सके। अखिल भारतीय कांग्रेस के अगस्त (१९४२) अधिवेशन ने इस नीति को दूसरे कारणों से भी स्वीकार करके यह सिद्ध कर दिया कि यह नीति सबसे उत्तम और देश-भक्ति पूर्ण है। इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी युद्ध में कुछ शर्तों पर ही सहयोग देने का वचन दिया।

और यद्यपि कम्यूनिस्टों ने किसान संगठन पर काफ़ी अधिकार प्राप्त कर लिया फिर भी हमारे किसानों की देशभक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि उन्हें इस बात का साहस नहीं हुआ कि वे कोई और नीति स्वीकार करा लें जिसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद से बिना शर्त सहयोग या राष्ट्रीय हितों के प्रति विश्वासघात की गंध आती हो। चाहे किसान कांग्रेसवादी किसान संगठन के बाहर रहे हों या अन्दर, वे कम्यूनिस्टों द्वारा किसान-संगठन का, अँग्रेजी साम्राज्यवाद या सोवियत् रूस के हितों के लिये दुरुपयोग रोकने में सफल रहे।

कम्यूनिस्ट पार्टी ने किसान संगठन को नष्ट करके उनमें कूटनीतिक बहुमत कैसे प्राप्त किया ?

किसानों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के मार्ग से भ्रष्ट करने में असफल होकर कम्यूनिस्ट मई सन् १९४२ के बिहटा अधिवेशन में दूसरी चालें निकालने के लिये तैयार आये। परन्तु अब तक किसान संगठन में अनेक दल होते जा रहे थे और वे मूल संगठन से अलग हो रहे थे।

कांग्रेस समाजवादी दल ने सन् १६४१ में इसे छोड़ दिया, एक अलग प्रतिद्वन्दी किसान संगठन बनाया और उसका अधिवेशन बिहार में ही कुछ सप्ताह बाद करने का विचार किया। फारवर्ड ब्लाक ने भी सशर्त सहयोग के विरोध में किसान संगठन छोड़ दिया और दूसरा किसान संगठन बनाने का विचार किया। इसलिये इन परिस्थितियों में किसान कांग्रेस वाले अल्पमत में हो गये। बिहटा अधिवेशन के लिये चुनाव और नामजदगी आदि भी उचित रूप से न हो सकी क्योंकि गवर्नमेण्ट के दमन और रेलवे आदि की कठिनाइयों के कारण सब जगहों से उचित संख्या में प्रतिनिधि न आ सके। इसके अतिरिक्त जिले और प्रांतों के संगठन की उचित जाँच कभी भी न हो सकी और उनके मेम्बरों की लिस्ट या चुनावों का भी निरीक्षण न हो सका, क्योंकि तब तक कार्यकर्त्ताओं का मूल उद्देश्य ऐसा संगठन बनाने का था जिसे किसानों का एक स्वतन्त्र श्रेणी का संगठन कहा जा सके। वे लोग ऐसा संगठन नहीं बना सके थे जो पारस्परिक प्रतियोगिता का सामना कर सकता या विभिन्न राजनैतिक दलों के सैद्धान्तिक मतभेदों या उनके शक्ति और संगठन से सामञ्जस्य कर पाता।

इन चार वर्षों में आचार्य रंगा अधिकांश किसान आन्दोलन के प्रथम रूप को देश भर में संगठित करने के प्रयत्न में लगे हुये थे। उस समय इस बात का विचार नहीं किया गया कि उनका संचालन कौन कर रहा है क्योंकि सभी लोग साम्राज्यविरोधी संयुक्त मोर्चे पर और किसानों की न्यूनतम माँग के प्रश्न पर एकमत थे। किन्तु कम्यूनिस्ट इतने उदार नहीं थे। वे जिस किसी भी संगठन में घुसे वहीं शक्ति और पद की ही ताक में रहे किन्तु यह बात हम लोगों को सन् १६४०—४२ में ही स्पष्ट हो सकी जब उनमें और हम लोगों में सच्चे राजनैतिक भेद बढ़ गये। इसलिये बिहटा अधिवेशन के अवसर पर कम्यूनिस्ट

अनेक प्रान्तीय और जिला संगठनों पर अपने प्रभाव या अधिपत्य का दावा करने लगे। इसका यह तात्पर्य नहीं था कि उन लोगों ने वस्तुतः तालुक़ा या जिला संगठन बनाकर अपने लिये जनता की सहायता प्राप्त की थी। बंगाल और युक्तप्रांत में तो, जहाँ सचमुच वे सबसे अधिक संख्या में थे उन्होंने जनता को जान बूझ कर अपने संगठनों से बाहर रक्खा और केवल नाममात्र की किसान कमेटियाँ रक्खी। इन दोनों प्रान्तों में अनेक ऐसी कमेटियाँ थीं जिनसे रंगा जी के बार-बार के प्रयत्नों के होने पर भी कम्यूनिस्ट नियंत्रित कमेटियों ने कोई भी सम्बन्ध नहीं रक्खा। इन परिस्थितियों में काफ़ी कूटनीतिक शक्ति लेकर कम्यूनिस्ट, बिहटा के अधिवेशन में आये। २५ प्रतिशत से अधिक वोटरों की वोट देने की योग्यता पर आपत्ति की गई क्योंकि युक्तप्रान्त में जाली तौर पर मेम्बर बनाये गये थे, उनका चुनाव केवल नाम के लिये था और बहुतसी कमेटियाँ केवल काग़ज पर ही लिखी थीं, और उनका कोई वास्तविक संगठन नहीं था।

स्वामी सहजानन्द और इन्दुलाल याज्ञिक द्वारा किसान-पक्ष का त्याग—

कुछ विचित्र राजनैतिक परिस्थितियों से कम्यूनिस्टों की ताकत बढ़ी। आचार्य रङ्गा के १९३५—३६ में किसान कांग्रेस की नींव डालने के बाद स्वामी सहजानन्द और इन्दुलाल याज्ञिक ने अप्रैल सन् ३६ से उनसे सम्पर्क स्थापित किया और किसान आन्दोलन की नीति और गतिविधि को संचालित करने के कार्य में रङ्गा जी से सहयोग किया। परन्तु क्योंकि सन् १९३९ में इस देश में कम्यूनिस्टों की ताक़त बढ़ने लगी, वे कम्यूनिस्ट पार्टी की राजनीति की ओर ज्यादा ध्यान देने लगे। सन् १९४०—४१ में जेल में वे शायद कम्यूनिस्ट प्रभाव के शिकार हो

गये। इसलिए जेल से छूटने के बाद से ही वे किसान आन्दोलन में बहुत अधिक परिवर्तन के पक्षपाती हुये और उनकी नीति कम्यूनिस्टों के 'लोक-युद्ध' नारे के निकट पहुँच गई। इससे किसान कांग्रेस वादियों में भी फूट पड़ गई और ऐसा मालूम होने लगा कि बिहार के किसान कांग्रेसवादी कम्यूनिस्टों के साथ चले जायँगे और आंध्र तथा तामिल-नाड आदि के वफ़ादार साथियों को छोड़ जायँगे।

कम्यूनिस्ट तो अपनी नागपुर नीति से भी आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा क्रिप्स योजना को अस्वीकार किये जाने पर खेद प्रकट किया। लीग को आत्म-निर्णय के अधिकार के आधार पर पाकिस्तान दिलाया। गांधी जी द्वारा देश की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छेड़ने की कल्पना पर उन्हें बहुत खेद हुआ और गांधी जी के भारत छोड़ो नारे को तो उन्होंने व्यर्थ का सङ्कट समझा। ये लोग इस हद तक पहुँच गये कि किसान जनता को आगाह कर दें कि वह गांधी जी की राजनैतिक चालों से होशियार रहें और आने वाले राष्ट्रीय संघर्ष का पूर्णतः विरोध करें। किसानों को स्वराज-संग्राम के लिए उत्साहित करने का उनका जोश अब खत्म हो गया और साम्राज्यवादी आधिपत्य के प्रति उनकी घृणा भी हवा हो गई।

इन कम्यूनिस्टों ने इस बात की परवाह न की कि उनकी वर्तमान नीति उनके सन् १९३३ से अब तक के सभी राष्ट्रीय हितों के समर्थन करने वाली घोषणाओं के विरुद्ध थी। उन्होंने इस तथ्य की भी अवहेलना की कि उनकी नीति लेनिन के युद्ध सम्बन्धी सिद्धान्तों के और उनके भी पहले के 'क्रान्तिकारी पराजयवाद' के नारे के बिल-कुल प्रतिकूल थी। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि अन्तर्राष्ट्रीय कम्यू-निस्ट संघ की उपनिवेश नीति भी उनकी इस नई चाल से नष्ट हो

रही थी। वे केवल मास्को की आज्ञा मानकर रूस के स्वार्थों की चिन्ता में तल्लीन थे।

अपनी ग़लतियों की अनुभूति

इन सब बातों से हमारी आँखें खुलीं। हमने महसूस किया कि किसान-संगठन भी राजनैतिक दाव पेच का अखाड़ा बन रहा था और कम्यूनिट अपनी पार्टी तथा सोवियत् रूस के स्वार्थों की रक्षा के लिए उसका शोषण कर रहे थे। हमने यह भी महसूस किया कि किसान संगठन को राष्ट्रीय कांग्रेस और दूसरे राजनैतिक दलों से अलग एक स्वतन्त्र शक्ति बनाने का प्रयत्न भी ग़लत है। हमने यह अनुभव किया कि हमारे गुलाम देश में केवल दो मार्ग, या दो राजनैतिक दल हैं एक तरफ़ तो कांग्रेस और दूसरी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की इच्छुक पार्टियाँ हैं और दूसरी ओर मास्को द्वारा प्रोत्साहित कम्यूनिस्ट और अँग्रेजों द्वारा प्रोत्साहित सम्प्रदायवादी तथा पदाधिकार वादी लोग हैं। एक का पथ स्वतन्त्रता का है और दूसरे का पथ गुलामी का। एक देशभक्तों का दल है और दूसरा देशद्रोहियों का।

भाग्यवश बिहटा अधिवेशन के अवसर पर हमारा नेतृत्व करने के लिये प्रोफेसर रङ्गा हमारे बीच आ गये, क्योंकि ११ मार्च, १६४२ को वह छोड़ दिये गये। उनके नेतृत्व में हमने कम्यूनिस्टों का और उनके नये मित्रों स्वामी जी और इन्दुलाल जी का विरोध किया और हम लोगों ने कम्यूनिस्टों को अपनी नीति वापिस लेने के लिये वाध्य किया और इस अधिवेशन को नागपुर अधिवेशन के शर्त सहित सहयोग से बहुत दूर जाने से रोका। इस अधिवेशन ने गवर्नमेण्ट के साथ हमारे दिन प्रति दिन के सम्पर्क को सीमित कर दिया और जन-रक्षक समितियों की स्थापना की। इस

दिशा में हम पहले भी प्रयत्न कर चुके थे और कुछ सफलता भी पा चुके थे ।

किसान संगठन का कम्यूनिस्ट लोग किस प्रकार शोषण कर रहे थे ?

कम्यूनिस्ट अपनी पराजय से बौखला उठे थे। हमें यह मालूम था कि वे अपना खूनी घूँसा दिखाने के लिये अवसर की ताक में थे। हमने देखा कि कम्यूनिस्टों के साथ एक ही संगठन में रहना हमारे लिए असम्भव था क्योंकि वे किसानों का विकास रोक रहे थे। स्वामी जी के कम्यूनिस्टों के साथ हो जाने से हमारे लिए यह असम्भव हो रहा था कि हम कम्यूनिस्टों के 'लोक-युद्ध' नारे का प्रचार बन्द कर सकें। हम यह देख रहे थे कि किस प्रकार कम्यूनिस्ट किसानों को राष्ट्रीय कांग्रेस से दूर हटाते जा रहे हैं। इसलिये हम भी इस बात की प्रतीक्षा में थे कि या तो उन्हें किसान आन्दोलन से निकाल दिया जाय या हम स्वयं उससे बाहर निकल जायँ।

किसान देशभक्तों के साथ महान् गद्दारी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक राष्ट्रीय-संघर्ष छेड़ने का निश्चय किया। हमने उस प्रसिद्ध बम्बई के अगस्त प्रस्ताव (१९४२) का हृदय से स्वागत किया। परन्तु कम्यूनिस्टों ने इसे गांधी जी का 'जुआ' बताया। जब अँग्रेजी सरकार ने कांग्रेस और देश की राष्ट्रीय जनता पर आग बरसाना शुरू किया हमने वीर किसान जनता का, जो भारतीय राष्ट्रीयता और कांग्रेस की रक्षा के लिये खड़ी हुई थी, समर्थन किया परन्तु कम्यूनिस्टों ने जी जान से इस बात का प्रयत्न किया कि जनता को प्रताड़ित और राष्ट्रीय रक्षा के प्रयत्न को नष्ट कर दें। किसान-संगठन के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि पीड़ित

और शानदार किसान जनता की रक्षा के लिये आवाज उठा सकता। क्योंकि कम्यूनिस्टों ने गद्दारी की थी और उनकी कठपुतली किसान सभा के प्रधान और मन्त्री भी उनके साथ थे। इसके बाद किसान-स्थायी समिति का अक्तूबर प्रस्ताव (बम्बई) आया जिसने किसानों से प्रस्ताव किया कि उन देशभक्त किसानों को अलगा दिया जाय जो अँग्रेजी साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध जनता की रक्षा कर रहें थे। इसका तात्पर्य यह था कि किसान अपने ही भाई देशभक्त किसानों के साथ गद्दारी करें। संगटन के प्रति वफ़ादारी के नाम पर किसानों के प्रति इस अपराध को हम सहन नहीं कर सकते थे। हमने निश्चय किया कि समय आ गया है जब किसानों को आगाह कर दिया जाय कि वे इस सङ्गठन से सचेत हो जायँ जिसने ऐसी देश-द्रोह पूर्ण नीति का अवलम्बन करने का साहस किया है। यह बात स्पष्ट है कि जब तक किसान संगठन कम्यूनिस्टों से प्रभावित रहेगा तब तक वह देशभक्त और साम्राज्य विरोधी कर्तव्य से दूर ही हटता रहेगा। इसलिये हम सब लोग मिलकर उस किसान संगठन से अलग हो गये और छः प्रान्तीय संस्थाओं ने जो कांग्रेस की औपनिवेशिक राष्ट्रीयता में विश्वास करतीं थीं बिलकुल सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। अब हम लोग फ़ैजपुर किसान कांग्रेस के देशभक्ति पूर्ण और क्रान्तिकारी आदर्शों की ओर गये और १९४२ के राष्ट्रीय क्रान्ति के आदर्शों के आधार पर फिर किसान-कांग्रेस की स्थापना की।

कम्यूनिस्टों के सम्पर्क से शिक्षा

किसान-कांग्रेस का यही संक्षिप्त इतिहास है और कम्यूनिस्टों के साथ हमारे ये ही अनुभव हैं। किसानों के मोर्चे पर कम्यूनिस्टों के साथ सहयोग देने के कटु अनुभव से हमने यही सीखा कि कम्यूनिस्टों के परंपरागत किसान-विरोधी दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया है।

किसानों के लिये सच्चा जन-संगठन बनाने तथा उसे जनता के सहयोग, सभारम्भ और उसकी भावनाओं, आवश्यकताओं और विचारों पर आधारित करने का उन्होंने सच्चा प्रयत्न कभी नहीं किया। वे किसानों की राजनैतिक जागृति, संगठन और आत्मविश्वास से, चाहे वह स्वतंत्र शक्ति के रूप में विकसित हो या राष्ट्रीय क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में, डरते हैं। वे यह नहीं चाहते कि किसान स्वतंत्ररूप से सोचें और शक्ति प्राप्त करने के लिये अपना राजनैतिक कार्यक्रम बनावें। राष्ट्रीय कांग्रेस के सहयोग से देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करके 'किसान मजदूर प्रजा राज' की स्थापना करने का प्रयत्न करें। वे किसानों की राजनैतिक शक्ति के विकास में बाधा डालते हैं जिससे किसान सर्वहारा की सार्वभौम तानाशाही को प्राप्त करने में बाधा न डालें या देर न करें। वे चाहते हैं कि किसान केवल कहार और घसकटे बने रहें जबकि उनके साथी सर्वहाराजन या कम्यूनिस्ट, समाज और राज्य पर शासन करें। देश में हर जगह किसान आन्दोलन में उन्होंने अपने थोड़े से आदमियों को नामजद कर दिया है और किसानों के जनत्रांतिक और प्रगतिशील विकास को रोका है। वे उपनिवेशों की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उत्सुक नहीं हैं यदि वह उनके नेतृत्व द्वारा या उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नहीं मिलती।

कम्यूनिस्ट अपनी किसान विरोधी भावनाओं के होते हुये भी और सन् १९३६ तक किसान आन्दोलन से बिलकुल बाहर होते हुये भी अब उसमें इसीलिये आये हैं कि किसानों के सच्चे विकास को रोक दें; उसे केवल कागज़ी संगठन रक्खें और राष्ट्रीय नेतृत्व का अनुसरण करने से हटा दें। वे लोग उपनिवेशों की राष्ट्रीयता का सच्चा क्रान्तिकारी महत्व समझ नहीं सके हैं और उपनिवेशों की राष्ट्रीय क्रान्ति को वे केवल सर्वहारा की क्रान्ति का पूरक और उसीसे उत्पन्न समझते हैं। उनके लिये सर्वहारा की क्रान्ति और उसकी सबसे प्रबल सफलता सोवियत्

रूस ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और किसी संघर्ष काल में इन्हीं की रक्षा करना और इन्हें मजबूत बनाना आवश्यक है और यदि राष्ट्रीय क्रान्ति और उपनिवेशों की जनता सर्वहारा की क्रान्ति या रूस के विरुद्ध होते हैं तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिये। उनकी साम्राज्यविरोधी या फासिस्ट विरोधी घोषणायें और कार्य केवल लोगों को विश्वास दिलाने के लिए हैं जिससे वे उपनिवेशों की परतन्त्र जनता को अपनी पार्टी या सोवियत् रूस के स्वार्थों के लिए इस्तैमाल कर सकें और उनका उद्देश्य है कि रूस के स्वार्थों के प्रचार के लिए इनका प्रदर्शन किया जाय।

इसलिये यदि किसान राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का ज़रा भी ध्यान रखते हैं तो कम्यूनिस्टों से इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं चल सकता। यदि किसान स्वतन्त्र भारत में सच्ची और सफल राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, यदि वे किसान मजदूर राज की स्थापना करना चाहते हैं और यदि वे सर्वहारा के एक वर्गीय हितों के लिये अपना बलिदान नहीं करना चाहते और कम्यूनिस्टों के दलगत स्वार्थों के लिये अपने वर्ग–हितों को नष्ट नहीं करते तो उन्हें कम्यूनिस्ट राजनीति से नाता तोड़ लेना आवश्यक है।

किसानों की आर्थिक शक्ति को दबाने के लिए कम्यूनिस्टों ने अगस्त १६४२ से जो कुछ किया है उसे हम कैसे भूल सकते हैं। शहरी जनता और सर्वहारा के हित के लिये भारतीय कम्यूनिस्टों ने किसानों के हितों का बलिदान किया है। उन्होंने खेती से पैदा होने वाली वस्तुओं का मूल्य उचित मात्रा में बढ़ने से रोका है जबकि कल कारखानों में काम करने वालों के वेतन की वृद्धि के लिये वे बराबर लड़ते रहे हैं। वार–बाण्ड की ख़रीद में सहायता देकर और बङ्गाल की आत्म–निषेध नीति से उन्होंने किसानों को और गरीब बनाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने

किसानों के ऊपर अन्यायपूर्ण ग़ल्ला खरीद की नीति लादकर मनमानी तौर पर ग़ल्ला इकट्ठा करवाने में सरकार को मदद दी।

इस प्रकार भारतीय कम्यूनिस्टों ने किसान आन्दोलन को सदा के लिये Bugbear (हौआ) बना लिया है और किसान जनता की आंखों को खोल दिया है और वे कम्यूनिस्टों के अपने आन्दोलन में घुसने देने के खतरे को समझ गये हैं। इसलिये अब कम्यूनिस्ट, सरल किसानों को अपनी कूटनीति का अस्त्र नहीं बना सकते।
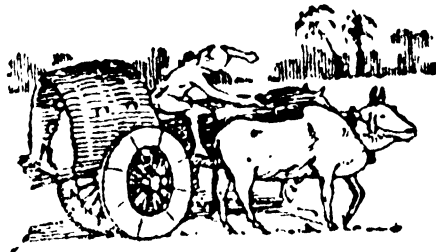
अध्याय १

कम्यूनिस्ट पार्टी के इरादों के सम्बन्ध में हमारा अनुभव

कम्यूनिस्ट पार्टी के सच्चे उद्देश्य और उसकी प्रकृति को समझकर हम उनकी विचारधारा के मूल का परीक्षण करना चाहते हैं जिससे कम्यूनिस्टों की भारत-विरोधी, किसान-विरोधी और निर्लज्ज नीति का निर्माण हुआ है। हमारी सारी आशायें कि हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट उपनिवेशों की राष्ट्रीय क्रान्ति का पूरा महत्व और विश्वजनीन उद्देश्य समझेंगे, व्यर्थ सिद्ध हुई। इसका कारण यह है कि कम्यूनिस्ट अपने मार्क्स--लेनिनवादी किसान विरोधी अन्धपक्षपात को अभी तक दूर नहीं कर सके हैं। वे यह समझने में असमर्थ हैं कि उपनिवेशों में किसान ही क्रान्तिकारी मोर्चे के नेता होते हैं क्योंकि वे अपनी किसान-विरोधी परम्परा को अभी जीत नहीं सके हैं। अब हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी यह आशा कि उपनिवेशों के कम्यूनिस्ट तो अवश्य ही किसानों की सच्ची सेवा करेंगे और पश्चिम के सिद्धान्तों को भूल जायेंगे कि सामाजिक क्रान्ति में किसानों का उपयोग उन्हें

केवल सर्वहारा समाज का परतन्त्र अंग बनाने के लिये ही होना चाहिये।

चीन के सम्बन्ध में अधिक जानकारी पाकर और हिन्दुस्तान में कम्यूनिस्टों के अनुभव के कारण हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वे किसानों का शोषण केवल अपनी खण्ड-सर्वहारा का अधिनायकवाद और अपनी उत्कट-इच्छा—अपनी पार्टी की तानाशाही के लिये ही करना चाहते हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी के किसान-विरोधी विचार

कम्यूनिस्ट पार्टी के किसान-विरोधी विचार, भय और परम्परायें क्या हैं जिनसे कम्यूनिस्टों के सम्बन्ध में हमारी आशायें झूठी हो गई हैं और जिससे हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी इस प्रकार देश-द्रोही, किसान-विरोधी और घोर स्वार्थपूर्ण पार्टी हो गई है जो हिन्दुस्तान की उस विशाल किसान जनता के हितों को नष्ट करने के लिये कटिबद्ध है जो हमारी चालीस करोड़ आबादी के ८० प्रतिशत हैं।

किसानों के सम्बन्ध में मार्क्स और एञ्जिल्स के विचार

वैज्ञानिक समाजवाद के मूल प्रवर्तक मार्क्स और एञ्जिल्स थे उन्होंने भी किसानों के क्रान्तिकारी महत्व, आवश्यकताओं और योग्यता तथा संसार की सामाजिक क्रान्ति के इतिहास में उनके सम्बन्ध में बहुत ही निर्मूल, इतिहास विरोधी और अन्यायपूर्ण विचार रक्खे हैं।

सन् १८४८ ई० में ही कम्यूनिस्ट मैनिफ़ेस्टो में मार्क्स और एञ्जिल्स ने किसानों और अन्य प्रजा तथा बौद्धिक और कलाकार वर्गों के प्रति अविश्वास प्रकट किया है। उन्होंने कहा है:—

"निम्न मध्यवर्ग के लोग, छोटे-छोटे उत्पादक, दूकानदार, लोहार, सोनार आदि और किसान उच्च शोषक वर्ग से इसलिये लड़ते हैं कि मध्यवर्ग के रूप में उनकी सत्ता क़ायम रहे। इसीलिये वे क्रान्तिकारी

नहीं वरन् अनुदार हैं। यही नहीं, वे वस्तुतः प्रतिक्रियावादी हैं, क्योंकि वे इतिहास की प्रगति को पीछे की ओर ले जाते हैं। यदि संयोगवश वे क्रान्तिकारी होते हैं तो अपने सर्वहारा हो जाने की आशंका को ध्यान में रखकर ही क्रान्तिकारी बनते हैं। इस प्रकार वे अपने हितों की रक्षा नहीं करते बल्कि सर्वहारा के दृष्टिकोण से समझौता करने के लिए वे अपना दृष्टिकोण छोड़ देते हैं।

ऐञ्जिल्स के अनुसार पूँजी (कैपिटल) के तीसरे भाग में मार्क्स ने किसानों के बारे में कहा है:—

"किसानों का वर्ग असभ्य लोगों का एक अलग वर्ग है जो मनुष्य समाज से आधा बाहर है। और इस वर्ग में प्राचीन सामाजिक रूपों का सारा भद्दापन और सभ्यदेशों की सारी विपत्ति—दोनों पाई जाती हैं।

हमने मार्क्स तथा ऐञ्जिल्स के इन सारे इतिहास विरोधी और किसान—विरोधी सिद्धान्तों को अपने 'संसार की किसान जनता की चुनौती' और 'राष्ट्रीय क्रान्तिकारी मार्ग की रूप रेखा' नामक प्रबन्धों में ग़लत सिद्ध कर दिया है। प्रेबीशेरीख नामक साइबेरियन ने भी योग्यतापूर्वक मार्क्स के ग़लत सिद्धान्त का अपने 'लिविंग स्पेस' नामक ग्रन्थ में खण्डन किया है:—

पहली बात तो यह है कि किसानों का वर्ग ऐसा नहीं है जिसे पूँजी-वाद की विजय से नष्ट हो जाने का भय हो। प्रत्युत आजकल के स्वतन्त्र किसानों का वर्ग जो नित्य प्रति अपनी थोड़ी सी ज़मीन पर और खेती के कोष पर अधिकाधिक अधिकार पाता जा रहा है वर्तमान पूँजीवाद की उसी प्रकार उत्पत्ति है जैसे वर्तमान मज़दूर वर्ग।

दूसरी बात यह है कि वर्तमान किसानों का एक अलग वर्ग है और उन्हें पूँजीवाद को खत्म करने वालों का उत्तराधिकारी होने का उतना ही अधिकार है जितना सर्वहारा को, और वे मध्यवर्ग के अङ्ग

नहीं हैं। एशिया और अफ्रीका की महान कारीगर जनता के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है। मार्क्स का यह विश्वास कि किसानों का ऐसा वर्ग है जिसका कोई भविष्य नही और वे समाप्त हो जायंगे, इतिहास द्वारा बिलकुल गलत सिद्ध हो चुका है। उसी प्रकार उनका यह निर्णय भी कि वे क्रान्तिकारी नहीं वरन् अनुदार हैं, बिलकुल गलत है।

उनका यह मान लेना भी कि किसानों का सर्वहारा बन जाना अनिवार्य है, निर्मूल था। इसके विरुद्ध ग्रामीण जनता के अधिकाधिक भाग और पूर्णत: औद्योगीकरण वाले देशों के सर्वहारा वर्ग के भी कुछ भाग आगे बढ़ रहे हैं और स्वतन्त्र आर्थिकतः स्वावलम्बी और राजनैतिक रूप से जागृत और संगठित हो रहे हैं। सोवियत् रूस में किसानों को सर्वहारा बनाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया गया और उनको किसान वर्ग से विघटित किया गया। यहाँ तक कि उन्हें किसान-संघों के रूप में संगठित नहीं होने दिया गया। फिर भी वे एक अलग वर्ग रहने में और सर्वहारा से मिलकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न खोने में सफल हुये हैं।

रूस के किसानों ने सामूहिक कृषि को अपनाकर तथा अत्यन्त मशीन संचालित खेती में जाकर भी अपने अस्तित्व की रक्षा की है क्योंकि उन्होंने एक ऐसी बात का अनुभव किया है जिसे कट्टर सम्प्रदाय वादी बोलशेविक पार्टी कभी न स्वीकार करती कि उनके पेशे के प्रकार (कृषि) से ही उनमें और सर्वहारा में एक महत्वपूर्ण अन्तर है और किसानों के रूप में सर्वहारा से भिन्न उनके अलग और स्पष्ट हित हैं।

जहाँ तक विश्व की सामाजिक क्रान्ति में किसानों के भाग का प्रश्न है हिन्दुस्तान और चीन के किसानों ने पूर्व और पश्चिम के साम्राज्यवाद और फ़ासिस्टवाद के विरुद्ध अनेक वर्षों से वीरतापूर्ण सफल लोहा लेकर

मार्क्स और एञ्जिल्स के किसान-विरोधी सिद्धान्तों को ग़लत सिद्ध कर दिया है।

यह युग मार्क्स के अनुमान के अनुसार सर्वहारा की क्रान्ति का युग नहीं वरन् लेनिन की कल्पना के अनुकूल कृषक जनता की और उपनिवेशों की राष्ट्रीय क्रान्ति का युग है। यद्यपि लेनिन या उनके लन्दनस्थित प्रतिनिधि इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे किन्तु सर्वहारा अभी इतनी छोटी शक्ति है कि उसे लोग जान भी नहीं सकते और आज तो सच्ची क्रान्तिकारी शक्ति संसार के किसानों की ही है जो बुद्धि वर्ग के नेताओं के सहयोग से संसार की क्रान्ति का नेतृत्व कर रही है।

एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका तथा दक्षिण पूर्वी योरोप में आज सबसे प्रगतिशील और सफल क्रान्तिकारी शक्ति किसानों की ही है और वे ही विश्व-मानवता के बहुसंख्यक भाग में भी हैं।

'संसार के किसानों की चुनौती' नामक पुस्तक में आचार्य रङ्गा ने मार्क्स के सिद्धान्त को कि किसान प्रतिक्रान्तिवादी हैं, और वे मानव समाज से आधा बाहर हैं ग़लत सिद्ध करने के लिए पर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाण दिया है।

उन्होंने इस बात को सिद्ध किया है कि किसानों की क्रान्तिकारी परम्परायें और सफलतायें किसी भी दूसरे वर्ग से अधिक नहीं तो समान अवश्य रही हैं। रूस का बोलशेविक सर्वहारा वर्ग भी इसका अपवाद नहीं। श्री प्रीबिशेविस्कृ ने गद्य और पद्य का उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि किस प्रकार बलकान के किसानों ने अपने क्रान्तिकारी प्रयत्नों से अपने वर्तमान अधिकारों, सम्मान और संगठन को प्राप्त किया है।

मार्क्सवाद को कालान्तर के विकास के अनुकूल बनाने में बाद के समाजवादियों की असफलता-पूँजी खण्ड २, पृष्ठ ८७७

बाद के समाजवादी, जो अपने को सच्चा मार्क्सवादी कहने का दावा करते हैं, इस बात को भूल गये हैं कि मार्क्स के विचार अपने समय की आर्थिक परिस्थितियों के कम या अधिक स्पष्ट व्याख्यायें हैं। जैसा कि एञ्जिल्स ने स्वीकार किया है (१८८३)। वस्तुतः मार्क्स और एञ्जिल्स जैसे प्रकाण्ड विद्वान् भी एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के कबीले वाले निवासियों की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां, परम्पराओं और सफलताओं का पूरा ज्ञान नहीं रखते थे क्योंकि इतिहास, मानव-विज्ञान और पुरातत्व का उनका तत्कालीन ज्ञान पूर्णतः विकसित नहीं था। इसलिये उनके कट्टर अनुयायिओं ने यह मान लिया है कि किसानों के विरुद्ध मार्क्स के विचार और पक्षपात बीसवीं सदी में भी ठीक प्रमाणित होते हैं और इस प्रकार का अनुमान मार्क्स और लेनिन की शिक्षा के विरुद्ध है।

उन्होंने ऐसी भयङ्कर भूल क्यों की है? क्योंकि मार्क्स ने यह कहा था कि "पूँजीवादी उत्पत्ति की प्रवृत्तियाँ एक अनिवार्य लक्ष्य को लेकर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ती हैं।" इसका परिणाम हुआ कि मार्क्स के कट्टरपंथी शिष्य उनके प्रत्येक लिखित शब्द को लेकर शपथ करने लगे और उन्होंने इस बात का ध्यान नहीं दिया कि योरोप के बाहर के देशों के रीति रिवाज और बदलती हुई राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं। पूँजी खण्ड २, पृष्ठ ८६३

लेनिन ने अपनी पुस्तक 'राज्य और क्रान्ति' में लिखा है कि मार्क्स के निर्णय योरोप महाद्वीप की परिस्थियों तक ही सीमित थे परन्तु आज के कट्टर मार्क्सवादी उनके निर्णयों को संसार भर के लिये ला

करने का प्रयत्न करते हैं। कितनी दुःखद भूल है। वे लोग मार्क्स की इस चेतावनी को भूल जाते हैं "कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग की अपनी निजी विशेषता होती है।" इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि मार्क्स ने तो स्वयं कभी अपने को मार्क्सवादी कहने का दावा नहीं किया था। पूंजी खण्ड २, पृष्ठ ८७२।

क्या किसानों की आर्थिक प्रणाली अवश्य नष्ट हो जायगी ?

मार्क्स एञ्जिल्स और लेनिन ने इस बात को क्यों स्वीकार कर लिया कि किसानों की आर्थिक प्रणाली सामन्तवाद से पूँजीवाद के मानव-विकास की प्रगति में नष्ट हो जायगी ? क्योंकि उन्होंने यह मान लेने की गलती की कि किसान वर्ग मध्यवर्ग का ही एक अँग है (मार्क्स) और मध्यवर्ग का भी अन्तिम भाग है (लेनिन)। परन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल थी। सामूहिक कृषि में लगी हुई रूस की किसान जनता भी आज तक सर्वहारा वर्ग की नहीं बन सकी है। वे अर्द्ध सर्वहारा किसान भी नहीं वरन् वर्ग चेतना से युक्त संगठित किसान हैं।

मार्क्स ने यह लिखा था, "कि पूँजीवाद क्रमशः उन्नति करता जायगा। किसानों की धरती छिन जायगी और वे ज़मीन से अलग कर दिये जॉयगे" किन्तु आज तक ऐसा नहीं हो सका है। पूंजी— पृष्ठ ८४५।

और उन्होंने इसे क्रान्तिकारी पथ बताया था:—"कि विशाल जन समूह एकाएक जीवन के साधनों से वञ्चित कर दिये जाँयगे और बाज़ार में स्वामीहीन सर्वहारा के रूप में छोड़ दिये जॉयगे।"

वे जानते थे कि यह कैसे किया जाता है। "उत्पादकों को उनकी जायदाद से बड़ी निर्दयता और गुन्डेपन से बेदख़ल किया जाता है

और सबसे जघन्य और नीचता पूर्ण प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर यह बर्बरता की जाती है।"

किसान वर्ग की आर्थिक समाप्ति की अश्वयंभाविता के ग़लत परिणाम के अतिरिक्त मार्क्स ने विशाल किसान जनता को बेदखल करने की अमानुषिक प्रवृत्ति की उचित ही आलोचना की है। और कितने दुःख का विषय है कि जब सङ्गठित किसान वर्ग पूँजीवाद की इस जघन्य और बुरी प्रवृत्ति का सामना करता है मार्क्सवादी मैनीफ़ेस्टो की शब्दावली में किसानों की निन्दा करने के लिये अपने को बाध्य समझते हैं और उनके लिये ये विशेषण देते हैं कि वे "क्रान्तिकारी नहीं वरन् अनुदार और प्रतिक्रियागामी हैं।"

किसानों के विरुद्ध मार्क्सवादियों द्वारा की हुई एक और घातक भ्रान्ति का उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

"मार्क्स के विचारों के अनुसार किसानों की आर्थिक प्रणाली संसारभर में निकृष्टता का प्रचार करेगी।" उनका दृढ़ विश्वास था "समाज के गर्भ में ऐसी शक्तियाँ और भावनायें काम कर रही हैं जो उत्पादन की इस प्रणाली को विकास में बाधक समझती हैं।"

इसलिये वे इस परिणाम पर पहुँचे कि,

"यह प्रणाली अवश्य नष्ट कर दी जाय और यह नष्ट हो रही है।"

उन्होंने यहाँ तक कहा, कि जनता का इस प्रकार बेदखल कर देना भयङ्कर है और पूँजी के इतिहास की भूमिका है। पूँजी पृष्ठ ८४४-४५.

मार्क्स ने यह सोचकर भयङ्कर भूल की कि किसानों की आर्थिक प्रणाली अवश्य खत्म कर दी जाय और यह उसी प्रकार खत्म हो जायगी, जैसे-पूँजीवादी प्रगति में बाधा देने वाली और शक्तियाँ।

परन्तु सहकारिता के सङ्गठन में किसानों और कारीगरों की आर्थिक प्रणाली को मजबूत बनाने की जो शक्ति है उसे मार्क्स नहीं समझ सके। क्योंकि लैसेलियन और फ्रांसीसी समाजवादियों के सहकारी समाजवाद के विकास के प्रयत्नों के विरुद्ध उनके हृदय में बहुत पक्षपात था।

यद्यपि मार्क्स, गत शताब्दी में इस बात का अनुभव न कर सके; तथापि उनके कट्टर भक्त इस तथ्य को भी न इन्कार कर सके कि समाज के गर्भ में चलने-फिरने वाली शक्तियों में सबसे प्रगतिशील शक्ति किसानों की आर्थिक प्रणाली है यदि वह सहकारी सङ्गटन से संचालित हो।

किसानों से सम्बन्धित पूँजीवाद के सङ्गठन के प्रति एञ्जिल्स का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी और कम कठोर है। उन्होंने कहा है,

"हम निश्चय रूप से छोटे किसानों के पक्ष में हैं। उनकी स्थिति अधिक सह्य बनाने के लिये हम हर समय प्रयत्न करेंगे सहकारी कृषि की ओर उनकी प्रगति में हर प्रकार की सहायता देंगे। परन्तु यदि वे इस निर्णय (सहकारी कृषि) पर नहीं पहुँचते तो हम उन्हें इस विषय पर सोचने का काफ़ी समय देंगे।"

विगत साठ वर्षों में जब से एञ्जिल्स ने यह कहा, अधिकाधिक संख्या में स्कैण्डिनेविया से हालैण्ड तक, इटली से आयरलैण्ड तथा अमेरिका से जापान तक किसान सहकारी प्रणाली को अधिकाधिक क्षेत्रों में अपनाते रहे हैं। और यह सब स्वतन्त्र रूप से और समाजवादियों की उदासीनता तथा कहीं-कहीं विरोध के होते हुये भी होता रहा है। सोवियत् रूस—सर्वहारा की तानाशाही की सारी शक्ति और उत्साह से सहकारी सङ्गठन आगे बढ़ाया गया है। इसलिये

किसानों की आर्थिक प्रणाली का महत्व स्वीकार कर लिया गया है और वह समाप्त नहीं की गई है।

इन सब बातों के होते हुये भी कट्टर कम्यूनिस्ट मार्क्स की सौगन्ध खाकर किसानों को खतम करने के लिये अपने पुराने सपनों में ही पड़े हुये उन्हें किसानों के भविष्य में विश्वास नहीं है।

उनकी तमाम आशाओं के विरुद्ध यह मार्क्सवादी अनुमान अभी सत्य नहीं हुआ है और सत्य हो भी नहीं सकता। सोवियत् रूस में भी कोलखोज़ी (सामूहिक कृषि वाले) किसान, किसान बने रहने का ही प्रयत्न करते हैं और सर्वहारा बनने के लिये तैयार नहीं होते। सोवियत् रूस में सर्वहारा का ही शासन है, फिर भी किसानों को सर्वहारा बनने का लोभ नहीं होता।

गत सौ वर्ष के आर्थिक इतिहास का यही परिणाम है। जब से कम्यूनिस्ट मैनिफ़ेस्टो ने अपना किसान-विरोधी सिद्धान्त प्रचारित किया, तब से आज तक उसकी सत्यता सिद्ध नहीं हो सकी।

आजकल संसार भर में १ अरब २० करोड़ से भी अधिक किसान हैं जो सामूहिक या व्यक्तिगत खेती कर रहे हैं। मार्क्स ने संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स और आयर्लैण्ड की ग्राम्य अर्थपद्धति के अध्ययन के आधार पर यह अनुमान किया था कि किसानों की अर्थपद्धति शीघ्र नष्ट हो जायगी। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं किसान अधिकाधिक मजबूत होते जाते हैं और उनकी सामूहिक या व्यक्तिगत आर्थिक प्रणाली अधिक स्थायी होती जाती है।

मार्क्स और उनके कट्टर भक्तों ने यह बात ठीक मान ली कि वे तमाम किसान जो सामन्तवादी युग की दास-प्रथा से मुक्त होंगे, सामन्तवाद के पतन के बाद थोड़े या अधिक समय में बढ़ते हुये

उद्योगवादी युग के असंयत सर्वहारा के रूप में आजायँगे। उन्होंने इस बात का अनुभव नहीं किया कि जैसे पूँजीवाद की ताक़त बढ़ रही है और वह किसानों को सामन्तवादी बन्धनों से छुड़ा रहा है, ठीक उसी प्रकार किसानों का एक नया वर्ग जिसमें नई चेतना और नया उत्साह है और अपने को सङ्गठित करने की प्रबल भावना है, आगे बढ़ रहा है।

वे यह बात भूल गये हैं कि जैसे—आधुनिक पूँजीवाद संसार की एक बड़ी शक्ति बन रहा है, संसार की कृषि की उपज पर अपना प्रभुत्त्व जमा रहा है और विभिन्न देशों के प्रत्येक गाँव व शहर निवासियों के उत्पादन और विनिमय के साधनों को अपने प्रभाव में ला रहा है, उसी प्रकार वह किसानों को उनकी उत्पादन और विभाजन की कार्यवाहियों के साथ परिचित कराके एक नये किसान वर्ग का निर्माण कर रहा है जिसमें सङ्गठन की लगन और आत्मरक्षा की प्रबल अभिलाषा है। यह बात सच है कि मार्क्स को इस प्रकार की सम्भावना की झलक मिली थी जबकि उन्होंने कहा था,

"सामन्तवादी प्रथा के टूट जाने पर छोटे दर्जे की खेती और स्वतंत्र कारीगरी दोनों पूँजीवादी उत्पादन के साथ-साथ चल पड़ीं।"

किन्तु न तो उन्होंने, न लेनिन ने ही करोड़ों स्वतंत्रता प्राप्त किसानों के विकास का राजनैतिक और आर्थिक महत्त्व समझा। सिडनी और बीट्रिसवेब ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सोवियत् साम्यवाद' में लिखा है कि:—

रूस और योरुप की कृषि की पहली ही क्रान्ति के सम्बन्ध में बहुत से विचारक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उच्चवर्ग की औद्योगिक क्रान्ति ने दासों को किसानों की श्रेणी दे दी। खण्ड १, पृष्ठ २३५

परन्तु बीसवीं शताब्दी और १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की वास्तविक दिशा क्या रही है?

विभिन्न देशों के किसानों की विशाल संख्या को नये अधिकार मिल गये हैं। बेगार और दासता से वे मुक्त हो गये हैं। काश्तकारों को मौरूसी हक़ मिला और उसके बाद वे अपनी ज़मीन के मालिक बन गये क़ानूनी तौर पर या जबरदस्ती, बड़ी-बड़ी रियासतें टुकड़ों में बँट गई और किसानों ने उन पर अधिकार कर लिया। आज भी कभी एक देश में कभी दूसरे देश में किसान सामन्तवादी बन्धनों, करों या और कष्टों से छुटकारा पा रहे हैं। सन् १६११ से दक्षिणी अमेरिका के किसान उन्नति कर रहे हैं, सन् १६१६ से बलकान के किसानों ने अपने अधिकार लिये हैं। चीन के किसानों को सामूहिक उन्नति सन् १६२५ से आरम्भ हुई है। हिन्दुस्तान के किसान सन् १६२० से और अफ्रीका के किसान आजकल अपने लिये जीने की शक्ति प्राप्त कर रहे हैं और योरुप के लगाये बागों तथा खेतों में अपना हिस्सा ले रहे हैं। और यह सब मार्क्स और एञ्जिल्स के कम्यूनिस्ट मैनिफ़ेस्टों के बाद से ही हो रही है।

मार्क्स उस समय इस परिणाम पर पहुँचे थे कि व्यक्तिगत और बिखरे हुये उत्पादन के साधनों में परिवर्तन अवश्य होगा। किन्तु उन देशों में भी जहां मशीनों पर आधारित बड़े पैमाने पर चलने वाले उद्योग हैं आज तक पूँजीवादी कृषि के लिये कोई स्थायी आधार नहीं है। न तो मार्क्स के निश्चित अनुमान के अनुसान किसानों की विशाल सख्या ज़मीन से बेदखल ही है।—पूंजी भाग ३, पृष्ट ८३०

मार्क्स कभी न सिद्ध होने वाले ऐसे परिणामों पर इस लिए पहुँचे कि उनका विचार था कि सहकारिता किसानों की अर्थ पद्धति में ग्राह्य नहीं होगी। उन्होंने अफ्रीका और एशिया में प्रचलित किसानों की सहकारिता की परम्परा अर्थात् उत्पादन की क्रिया, प्राकृतिक शक्तियों पर समाज का अधिकार और नियंत्रण तथा उत्पादन की सामाजिक

शक्ति का महान् विकास—आदि के महत्व को नहीं समझा। वह उन वस्तुओं की कल्पना नहीं कर सके जो अनेक देशों में वर्तमान कृषि का अनिवार्य अंग बन गई हैं। कृषि के अधिकाधिक विभागों में आज तो सहयोग बहुत आवश्यक हो गया है जैसे:— सहकारी ऋण, बिक्री और खरीद, बीज, खाद और औजारों की खरीद और उपयोग, खेती के उन्नत उपायों का अन्वेषण और प्रदर्शन, फ़सलों का नियन्त्रण और वर्गीकरण।

वस्तुतः चीन हिन्दुस्तान और अफ्रीका के किसान अपनी परम्परा गत सहयोग प्रणाली को सुधार रहे हैं और उसे तालाबों और नहरों के निर्माण में लगा रहे हैं। मिट्टी की कटान को बन्द कर रहे हैं और अपने पशुओं की नस्ल सुधार रहे हैं। वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में कृषि के क्षेत्र में—खेती के समाज के गुण और अच्छाई में कर्ज़ के व्यय और साधन में. विक्रय और संगठन में और किसानों के गुण स्वभाव तथा संगठन में महान् क्रान्ति हुई है।

संसार के सभी देशों के किसानों के सम्बन्ध में यह बात सच हो रही है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के किसान गत शताब्दी के किसानों से हर प्रकार बहुत आगे और भिन्न प्रकार के हैं। इसलिए मार्क्स के परिणाम, विचार और निर्णय आज कल के किसानों के लिए लागू नहीं होते।

फिर भी मार्क्स के कट्टर अनुयायी चाहते हैं कि हम आज भी विश्वास करें कि किसान केवल प्रति क्रिया गामी हो सकते हैं। उनमें से कुछ लोग इस विचार से अपने को आश्वासन देते हैं कि किसान तो केवल सर्वहारा वर्ग का कार्य कर रहे हैं जो उपनिवेशों में अभी प्रकट होने वाला है। जब किसान पूँजीवाद से लड़ते हैं तो वे सर्वहारा की तानाशाही, या कम्यूनिस्ट पार्टी के एकाधिकार का रास्ता

साफ़ करते हैं। पूँजीवाद जो संसार में सर से पैर तक पाप–पंक में सना हुआ और हर एक अंग से खून टपकाता हुआ आता है उसके विनाश में तत्पर किसान-वर्ग क्या प्रतिक्रियागामी हो सकता है ?

मार्क्स के अनुसार यह विश्वास करने में कि किसान एक अनिवार्य लक्ष्य की ओर जाने को बाध्य हैं, उनके अनुयायी भाग्यवादी होजाते हैं। वे यह सोचते हैं कि आयरलैण्ड और इङ्गलैण्ड के किसानों की जो दशा रही है वही सारे संसार के किसानों की भी होगी। कट्टर मार्क्स-वादी इस प्रकार तर्क करते हैं, क्या मार्क्स के इस प्रकार के विचार नहीं थे ? मार्क्स ने इङ्गलैण्ड और आयरलैण्ड के किसानों के पतन के इतिहास का विस्तृत अध्ययन नहीं किया था ?—पूंजी पृष्ठ ८४३

मार्क्स के अन्वेषणों का महत्व हम भी महसूस करते हैं। किन्तु यह दुःखद सत्य भी हम जानते हैं कि मार्क्स के दिनों में योरोप के सामन्तों के सम्बन्ध में लोगों को पर्याप्त ज्ञान नहीं था—एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के किसानों के बारे में लाइब्रेरियों में कोई साहित्य नहीं था। इसलिये मार्क्स के अन्वेषण निश्चय रूप से यूरोप के कुछ देशों विशेषकर पश्चिमी योरोप तक ही सीमिति थे।

हम इस बात को भी मानते हैं कि पश्चिमी योरोप के किसानों को जो संकट भोगने पड़े और जिनका इतना विनाशकारी परिणाम हुआ, उन्हीं संकटों का योरोप के बाहर के किसानों ने भी बार बार सामना किया है और फिर भी हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने उन संकटों पर विजय प्राप्त की है और पूँजीवाद भी उनके सामने पराजित और आत्मरक्षा के लिये विकल है।

संसार के किसानों की इस विजय का महत्व और महान् होजाता है जब हम पूंजीवाद द्वारा इस्तैमाल किये गये उन भयंकर तरीकों को याद करते हैं जिनके द्वारा उन्होंने किसानों को बेदखल किया है। उन्होंने किसानों को कभी बाग़ों और खेतों की मज़दूरी, फसल की हिस्सेदारी

(Rack rented Peasants) आदि के नाम पर धोखा देने का प्रयत्न किया है। और सब से विचित्र बात तो यह है कि पूँजीवाद ने जो अत्याचार २०वीं शताब्दी के किसानों पर किये हैं वे इतने ही बुरे हैं जितने गत पांच शताब्दियों में अंग्रेज पूँजीवादी ज़मींदारों द्वारा किये गये अत्याचार थे।

मार्क्स ने किसानों पर की हुई धोखेबाजी, छल, अमानुषिक दमन और बेदखली आदि की भयंकर विधियों का अद्भुत अध्ययन किया है। हम पूँजीवाद द्वारा संसार के किसानों पर किये हुये इस अत्याचार का बहुत संक्षिप्त विवरण देकर सन्तोष करेंगे।

बीसवीं शताब्दी में पन्द्रहवीं शताब्दी की पुनरावृत्ति......

मार्क्स के महान् ग्रन्थ कैपिटल से लिये हुये इन उद्धरणों में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि मार्क्स ने अँग्रेज ज़मींदारों और साहूकारों को जो अत्याचार करते पाया था आज अँग्रेज, बेल्जियन, डच जमींदार अपने उपनिवेशों में वही अत्याचार दुहरा रहे हैं।

वास्तव में यदि हम उनके विवरण में 'अंग्रेज किसान' के स्थान पर 'उपनिवेशों के किसान' पढ़ें तो प्रारम्भिक एकत्रीकरण (accumulation) का उनका पूरा अध्याय उस स्थिति का ही विशद वर्णन मालूम होता है जो योरोपीय बगीचेवाले या उनके नेता पूंजीवादी साम्राज्यवादियों ने उपनिवेशों के किसानों पर लादा है।

१५वीं से १९वीं सदी के अंग्रेज जमींदारों की तरह साम्राज्यवादी जमींदारों ने क़ानून की आड़ में उपनिवेशों के सारे धन का हरण बिना किसी वैधानिक प्रदर्शन के ही किया है। यह खुला डाका है। और इन सभ्य लोगों ने इस पैमाने पर लूट मचाई जैसा कि किसी सरकार ने भी अब तक नहीं किया था। इन्होंने शोषण के सभी पिछले रिकार्डों को तोड़ दिया। उपनिवेश लुटा दिये गये या प्रत्यक्ष अपहरण द्वारा खास-खास व्यक्तियों या कम्पनियों के अधिकार में कर दिये गये। यह सब कीनिया

और वेस्ट इंडीज़ में इसी शताब्दी में हुआ है। अफ्रीकनों या रेड-इंडियनों के जातीय स्वामित्व की उपेक्षा करके उनकी पुश्तैनी ज़मीन का लाखों एकड़ मुट्ठी भर योरोपीय बगीचे वालों या विजेताओं को दे दिया गया। मार्क्स के शब्दों में उच्च वर्ग के पूँजीपतियों ने इस कार्य में सहायता की। क्योंकि वे भूमि को भी व्यापार का एक साधारण अङ्ग बनाना चाहते थे। वे बड़े पैमाने पर की खेती और स्वामिहीन सर्वहारा की संख्या भी बढ़ाना चाहते थे।" जैसी स्थिति उस समय थी वैसी ही आज भी है। पूँजीपतियों का नया ज़मींदार वर्ग (बंगाल के ज़मींदारों की भाँति) नवीन उच्च आर्थिक पद्धति का साहूकार ही है जिसे लेनिन ने उच्च आर्थिक पूँजी का नाम दिया है।

उस ज़माने की तरह आज भी क़ानून स्वयं जनता की भूमि की चोरी का साधन और सहायक बन गया है। आज के पूँजीपति भी अपने पूर्वजों की तरह यह विश्वास करते हैं कि उपनिवेशों से जनता की ग़रीबी के आधार पर ही धन मिल सकता है। उन्होंने देशी जनता के मकानों पर भी चुङ्गी और टैक्स लगा दिया है, जिसे उन्हें नक़द देना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि उन्हें अपनी हर एक आवश्यकता के लिये बाज़ार जाना पड़ता है। जब वे अपनी जंगल और खेत की पैदावार से उन टैक्सों को बिलकुल नहीं दे पाते तो वे नौकरी की खोज में शहरों में जाते हैं, लोग उनके ऊपर आवारा और दरिद्र कहकर टूट पड़ते हैं, और उनको आवारा और दरिद्र होने के लिये दण्ड दिया जाता है यद्यपि दरिद्रता और आवारागर्दी की स्थिति उनके ऊपर ज़बर्दस्ती लादी जाती है।"

बेदख़ल अँग्रेज़ किसानों के बारे में कहे हुये मार्क्स के उपरोक्त वाक्य उसी प्रकार पीड़ित और शोषित उपनिवेशों की विशाल किसान जनता के सम्बन्ध में हूबहू लागू होते हैं:—

"इस प्रकार किसान जनता ज़मीन से ज़बर्दस्ती बेदख़ल कर दी गई, घर से निकाल दी गई, वाध्य करके वे लोग आवारा बना दिये गये और तब उन्हें कोड़ा लगाया गया, भयंकर क़ानूनों द्वारा दागे और सताये गये और तनख़्वाह की प्रथा को विवश करके स्वीकार कराया गया।"— पूँजी पृष्ठ ८१६.

पूँजीवाद के ऊपर उपनिवेशों के किसानों की विजय

परन्तु अंग्रेज़ और आयरिश किसानों की भांति उपनिवेशों के किसान साम्राज्यवादी पूँजीवाद के सामने नहीं झुके। अपने सामूहिक, जातीय और स्वाभाविक ढङ्ग में उन्होंने यूरोप के बगीचे वालों के आर्थिक शोषण के प्रयत्नों को नष्ट कर दिया और हृदयहीन वेल्जियन, फ्रांसीसी और अफ्रीक़ा के अंग्रेज़ पूँजीपतियों को तथा दक्षिणी अमेरिका के अमेरिकन, स्पेनी और पुर्तगाली पूँजीपतियों को उनका भयंकर और कुत्सित शोषण समाप्त करने पर वाध्य कर दिया।*

अन्त में साम्राज्यवादियों को नेग्रो रेड इण्डियन और अन्य उपनिवेशों की जनता को अपने ढङ्ग से रहने की आज्ञा देनी पड़ी। वे अपनी जातीय ज़मीन में आधुनिक व्यापारिक फ़सलें भी उगाने लगे हैं और अब वे अपनी सुविधा से अपना काम करते हैं, विदेशी बगीचे वालों की आज्ञा से नहीं।

---

*किसानों की अवांछित वस्तु को ख़तम कर देने की प्रवृत्ति का हवाला देते हुये पेयर्स ने अपनी 'रूस' नामक पुस्तक में लिखा है कि, "किसानों में अवांछित वस्तु को नष्ट करने की अद्भुत एकता और शक्ति होती है।"

गोल्ड कोस्ट के निग्रो किसानों ने लिवर मिल्स को अपना कोको बेचने से इनकार कर दिया और उसके मालिक को मिल बन्द कर देने के लिये वाध्य कर दिया।

गत २० वर्षों में मेक्सिको, चिली, और ब्राजील तथा बलकान के किसानों ने आक्रामक रूप में जमींदारों पर धावा बोल दिया है, उनकी रियासतों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है, उनका आपस में जमीनें बाँट ली हैं या अपनी ही पुश्तैनी जमीनें वापस ले ली हैं।

हिन्दुस्तान में भी गत ३५ वर्षों में किसानों ने नये अधिकार प्राप्त कर लिये हैं और उन्होंने यह विजय साम्राज्यवादी शोषण के इञ्जिन में लगे हुये जमींदारों के भयंकर विरोध और संघर्ष के बावजूद प्राप्त की है। चीन में भी डाक्टर सनयातसेन, च्यांगकाई शेक और कम्यूनिस्टों को भी किसानों की माँग के सामने झुकना पड़ा है और उन्हें साहूकारों और जमींदारों के पंजे से छुड़ाकर स्वतन्त्र करना पड़ा है। इस प्रकार किसानों ने पूँजीवादी शोषण और सामन्तवादी आधिपत्य के ऊपर विजय प्राप्त की है और एक नवीन शक्तिशाली तथा प्रगतिशील वर्ग के रूप में विकसित हुये हैं।

उन्हें समाप्त करने के जितने प्रयत्न हुये हैं उन सब पर उन्होंने विजय प्राप्त की है। यहाँ तक कि उन्होंने सोवियत् सर्वहारा के आक्रमण को विफल कर दिया है। श्री प्रीब्रिशेरिव् ने उचित ही यह दावा किया है कि किसानों का चिरंतन वर्ग है क्योंकि उनका पेशा चिरंतन है। उन्होंने कहा है, "आप बिना कारखाने के रह सकते हैं, पर बिना खेतों के नहीं।"

फिर भी क्यों हमें सर्वहारा-भक्त कम्यूनिस्ट पार्टी का अनुसरण करके किसानों की विजय को प्रतिक्रियावादी सोचना चाहिये? कदापि नहीं। जब किसानों के सम्बन्ध में मार्क्स अपने विचार लिख रहे थे, उस समय संसार व्यापी किसान आन्दोलन की सम्भावना नहीं थी। क्योंकि उस समय तक पूँजीवाद संसार की अर्थ-प्रणाली में अपना स्थान जमा रहा था। उस समय तक केवल सर्वहारा का ही आन्दोलन

प्रचलित था। पूंजीवाद संसार में बाज़ार बना रहा था और किसानों को उत्साहित या वाध्य कर रहा था कि वे अपनी आर्थिक पद्धति की ऐसी व्यवस्था करें कि बढ़ते हुये कारखानों और शहरों के लिये व्यापारिक सामान तैयार करने के लिये कच्चा माल दे सकें। इसलिये आधुनिक किसानों के संसार व्यापी महत्व को न समझना मार्क्स के लिये सम्भव था, क्योंकि तब तक किसान वर्ग अपने निर्माण के आरम्भिक युग में था। फिर भी मार्क्स की उपेक्षा इतिहास के प्रति एक प्रकार का अन्याय था क्योंकि फ्रांस के किसान एक विशिष्ट वर्ग के रूप में बन चुके थे। उनकी निजी राजनैतिक महत्वाकांक्षायें थीं और वे मार्क्स को चेतावनी दे रहे थे कि क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में उनकी उपेक्षा न हो सके। परन्तु लेनिन को जिन्हें सन् १६२२ तक की संसार की आर्थिक पद्धतियो के अध्ययन करने की सुविधायें थीं, किसानों की उपेक्षा नहीं करना चाहिये। बुखारिन, राल्फ फ़ाक्स, एमिल बर्न्स और दूसरे कम्यूनिस्ट विचारकों ने किसानों के प्रति जो उदासीनता दिखाई है या उनके प्रति जो पक्षपात और भय प्रकट किया है, वह बिलकुल निराधार है।

सोवियत् रूस में भी सामूहिक कृषि के प्रचार के लिये अनेक किसान-विरोधी कार्य किये गये किन्तु किसान उन सबमें विजयी हुये। सरजान रसेल (अगस्त १६४३) के प्रमाण के आधार पर हम यह जानते हैं कि अब किसानों को अपनी ज़मीन रखने का अधिकार मिल गया है। उसे बाग कहते हैं और आधे से ढाई एकड़ तक भूमि एक किसान रख सकता है। उस भूमि पर जितने जानवरों का निर्वाह हो सकता है, उतने जानवर भी रख सकता है। हाँ उन्हें सामूहिक खेत पर १०० दिन का परिश्रम देना होता है। सामूहिक कृषि वालों में भी किसान-प्रवृत्ति आगई है और किसान तथा कारखाने के मज़दूर एक वर्ग के नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार रूस के सामूहिक

कृषि वालों को बोलशेविक कट्टरता और कम्यूनिस्ट सिद्धान्त पर विजय मिली है। फिर भी कम्यूनिस्टों की कट्टरता आज भी बाक़ी है और वे किसानों के विरुद्ध अपनी एक शताब्दी पुरानी चालों को नहीं छोड़ते। श्री स्ट्रॉस ने लिखा है कि सामूहिक कृषि प्रणाली के बावजूद रूस के किसान, किसान ही रह गये हैं।

मार्क्स और ग्राम-संघ

मार्क्स हमारी ग्रामीण सभ्यता और ग्राम-संघों की संस्था तथा ग्राम-संघों में प्रचलित आर्थिक योजना के बिलकुल विरुद्ध थे।

सारे संसार में आजकल यह प्रयत्न किया जा रहा है कि गावों, शहरों और ज़िलों का आर्थिक जीवन इस प्रकार संगठित किया जाय कि भोजन और खपत के माल के उद्योगों के लिये स्वावलम्बी क्षेत्र बन जांय जिससे वर्तमान युद्ध के आधुनिक तरीक़ों के ख़तरे से, हवाई बम्बाज़ी तथा यातायात के साधनों के टूट जाने पर उनकी रक्षा हो सके। महात्मा गांधी तथा चीन और हिन्दुस्तान के देशभक्त इसी प्रकार की स्वावलम्बी आर्थिक योजना करना चाहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पूर्णतः औद्योगिक देश में भी ऐसी ही विकेन्द्रीकृत औद्योगिक और ग्राम्य अर्थ प्रणाली के प्रचार का प्रयत्न हो रहा है। सोवियत् रूस जर्मन आक्रमण के सामने ख़तम हो गया होता यदि उसके दूरदर्शिता पूर्ण स्वावलम्बी आर्थिक क्षेत्र न होते, जो आज भी सारे देश में कृषि और उद्योग के क्षेत्र में परस्पर सम्बद्ध हैं।

किन्तु मार्क्स का इस प्रणाली में कोई विश्वास नहीं था क्योंकि इसका सम्बन्ध पूँजीवादी विकास में सहायक नहीं बाधक था।

उन्होंने ग्राम-संघों के बारे में कहा है, "कि इनका आधार था—भूमि पर समाज का अधिकार, खेती और कारीगरी का समन्वय तथा

अपरिवर्तनशील (कभी न बदलने वाला) श्रम-विभाजन* । केवल अतिरिक्त वस्तु ही विक्रय की चीज़ होती थी। इस स्वावलम्बी समाज में उत्पादन के संगठन की सादगी ही एशियाई समाज की अपरिवर्तन-शीलता का रहस्य है।"

अपरिवर्तनशीलता से उनका तात्पर्य क्या है ?

यदि इसका तात्पर्य केवल यह है कि ग्रामीण अर्थ प्रणाली में सबके लिये काफ़ी काम मिलता था—बेकारी से रक्षा होती थी और सभी ग्राम-वासियों की जीवन-वृत्ति के लिये पर्याप्त साधन थे तो इसमें बुराई ही क्या है ?

किसानों का समर्थन प्राप्त करने में मार्क्स की असफलता

मार्क्स ने यह सिद्ध करने का दावा किया है कि वर्ग संघर्ष से अनिवार्यतः सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना होती है। फिर भी उन्होंने १८७०—७२ की स्वयं जाग्रत विशाल किसान जनता से अपील की कि वे कम्यून के अन्तर्गत पेरिस के अत्यन्त लघु-संख्यक मज़दूरों का नेतृत्व स्वीकार करें। परन्तु उन्होंने इस बात पर ज़रा विचार नहीं किया कि किसान जनता पेरिस कम्यून के मज़दूरों का नेतृत्व स्वीकार करना क्यों आवश्यक समझे ? जाक़री (बलवों) से लेकर महान् फ्रांस की राज्य-क्रान्ति तक किसानों को थोड़े दिनों से उत्पन्न सर्वहारा से कहीं अधिक क्रान्तियों और विद्रोहों का अनुभव था। वे किसान ही थे जिन्होंने जैकोबियन पार्लियामेण्ट के निर्णय के पहिले ही सामन्तयुग के काग़ज़-पत्र जला दिये थे, अतिरिक्त कर समाप्त

*मार्क्स का क्या तात्पर्य था कहा नहीं जा सकता—क्योंकि महाभारत और मनुस्मृति में यह विधान है कि किसी संकट के समय में बेकार आदमी अपनी जाति के पेशे के अतिरिक्त कोई भी और पेशा स्वीकार कर सकता है।

कर दिया था और जमींदारी और पोप-पंथ को मिटा दिया था। ऐसे किसानों से यह कहना कि वे कमज़ोर कस्बों और अनिश्चित पेरिस की जनता का नेतृत्व स्वीकार करें—बिलकुल ग़लत था।

किन्तु मार्क्स ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि उनकी माँगें केवल क्रान्तिकारी सर्वहारा द्वारा ही पूरी की जा सकेंगी। अपने बीसवीं शताब्दी के अनुयायिओं की भांति मार्क्स ने उन्हें राजनैतिक भाग देने का वचन नहीं दिया। केवल उनकी मांगों को पूरा करने की प्रतिज्ञा से उन्होने सन्तोष कर लिया।

यदि फ्रांस की जनता ने मार्क्स की शिक्षा स्वीकार की होती तो क्या पेरिस के सर्वहारा उनके साथ पूर्ण न्याय किये होते। यदि हम रूस के सर्वहारा वर्ग के कार्यों से निर्णय करें तो स्पष्ट हो जायगा कि उनकी दशा उससे अच्छी न हुई होती जैसी सर्वहारा के अधिनायकत्व में रूस के किसानों की हुई है।

सामूहिक कृषि की योजना स्वीकार कर लेने पर भी रूस के किसानों के साथ वहाँ के सर्वहारा वर्ग ने जैसा व्यवहार किया है, उसके लिये एक या दो उदाहरण देना पर्याप्त होगाः—

हिन्दुस्तान की मालगुज़ारी की प्रथा की तरह ही रूस में भी १५ से लेकर २० प्रतिशत फसल राज्य को देनी पड़ती है चाहे फ़सल या मौसम अच्छा रहा हो या बुरा। इसलिये किसानों को इसमें बड़ा कष्ट होता है। राज्य उन्हें बाज़ार दर से बहुत कम दाम देता है। शहर के मज़दूर गांवों के माल को बहुत सस्ता लेना चाहते हैं और अपनी तैयार की हुई चीज़ों पर अपनी सहयोग समितियों की सहायता से काफ़ी दाम लेते हैं। क़ीमत की कैंची किसानों के हित के विरुद्ध ही चलती है। सामूहिक कृषि की उपज में से इतनी कटौती की जाती है कि किसानों को केवल ४० प्रतिशत मिल पाता है। इसलिये उनकी हालत

हमारे यहाँ के साझीदार किसानों से अच्छी नहीं है। उनके लिये काम करने के कोई विधान नहीं हैं, क्योंकि कृषि की हालत के अनुसार यह असम्भव है। इसलिये उनकी हालत सर्वहारा से, जो शासक वर्ग है निश्चयरूप से बुरी है।
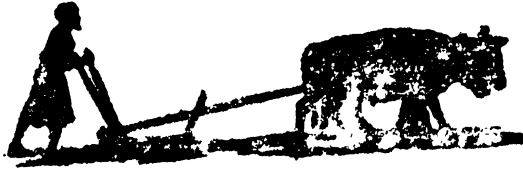
अध्याय ३

किसानों, कम्यूनिस्टों के सर्वहारा तानाशाही के नारे से सावधान !

लेनिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "मार्क्सवादी वह है जो वर्गयुद्ध का उद्देश्य सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना ही समझता है।" उनके इस वक्तव्य का आधार मार्क्स का वह दावा है कि वर्गयुद्ध से अनिवार्यत: सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना होती है। (राज्य और क्रान्ति) यदि वर्तमान कम्यूनिस्टों का भी आज यही विचार है तो उनकी सामाजिक प्रणाली में संसार की १ अरब २० करोड़ किसान जनता का सम्मानपूर्ण और प्रगतिशील स्थान कहाँ है ?

जनतान्त्रिक अधिनायकवाद

मार्क्सवाद और समाजवादी विचारधारा के अध्ययन के बाद कौत्स्की और उनके अनुयायियों ने यह मत निर्धारित किया है कि वर्गयुद्ध तभी तक है जब तक उच्चवर्ग का शोषण समाप्त नहीं हो जाता, इसलिये उन लोगों ने यह आवश्यक नहीं समझा कि पूँजीवाद की

समाप्ति के बाद समाजवाद की स्थापना के लिये सर्वहारा का अधिनायकत्व आवश्यक नहीं है। अब हम दोनों युद्धों, स्पेन और रूस के अनुभव से जानते हैं कि उच्चवर्ग के राज्यकाल को खतम करने के बाद कुछ समय के लिये जनतांत्रिक अधिनायकत्व अनिवार्य है। किन्तु सारी जनता को इससे तभी संतोष और प्रसन्नता होगी यदि यह शासन सब वर्गों का हो—सोवियत् रूस की तरह केवल सर्वहारा की एक वर्गीय तानाशाही न हो। किसी भी समय के लिये तानाशाही एक अविश्वसनीय और भयङ्कर राजनैतिक अस्त्र है और यदि यह केवल एक वर्ग की तानाशाही हो और वस्तुतः जनतांत्रिक न हो तो यह बहुत ही बुरा है। फिर भी कम्यूनिस्ट इसके लिये प्रतिज्ञा-बद्ध हैं। परन्तु उनकी कृपा दृष्टि किसानों पर नहीं है जो संसार के श्रमिकों के बहुसंख्यक भाग हैं वरन् सर्वहारा वर्ग पर जो सभी जगह अल्पतम संख्या में हैं।

लेनिन का अनुसरण करते हुये कम्यूनिस्ट विश्वास करते हैं कि वर्गयुद्ध का सिद्धान्त निश्चित रूप से सर्वहारा का राजनैतिक प्रभुत्व और अधिनायकत्व लाता है—यह विश्वास स्वय अति सिद्धान्तपूर्ण है।

यह बात स्पष्ट है कि मार्क्स, एञ्जिल्स और लेनिन पश्चिम के औद्योगिक देशों के बारे में ही अधिकांश सोचते थे इसलिये क्रान्तिकारी संघर्षों में सर्वहारा के महत्वपूर्ण और अधिकाधिक भाग की भावना से उनके मस्तिष्क भर गये थे। परन्तु पूर्व के उनके अनुयायियों ने भी लेनिन के ही शब्दों को दुहराया कि मजदूर दल नवयुग के नेतृत्व और और सङ्गठन के लिये तथा शोषितों और श्रमिकों के शिक्षक और नेता होने के सर्वथा उपयुक्त है। वस्तुतः लेनिन के लिये यह घोषणा करना उचित नहीं है कि योरुप के सर्वहारा भी विशाल किसान जनता, निम्नमध्यवर्ग और अर्द्ध सर्वहारा का उनके सामाजिक पुनर्निर्माण में नेतृत्व करने में समर्थ हैं। वस्तुतः योरुप की किसान जनता और प्रजा

ने आजतक सर्वहारा के नेतृत्व को स्वीकार करने से इनकार किया है और विशेषकर इसलिये भी कि सोवियत् रूस में स्थापित सर्वहारा की तानाशाही में उन्हें कुछ उत्साहवर्धक और प्रेरणापूर्ण वस्तु नहीं मिली है।

इसके अतिरिक्त किसानों की प्रतिक्रिया ऐसी हुई है जैसी मार्क्सवादियों ने कभी सोचा भी नहीं था यद्यपि मार्क्सवादी ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्व अनुमान करने में अपने को इतना कुशल समझते हैं जैसे प्राकृतिक इतिहास पढ़ने वाले।

(देखिये बुखारिन का ऐतिहासिक भौतिकवाद)

सर्वहारा के अधिनायकत्व की धमकी और किसानों और प्रजा के लिये कम्यूनिस्टों द्वारा प्रदर्शित घृणा के कारण ही योरुप के फ़ासिस्त शासन को शक्ति प्राप्त करने में सहायता मिली। दक्षिण पूर्व के किसानों ने भी सर्वहारा के अधिनायकवाद के विरुद्ध मार्ग ग्रहण किया, अपने निजी राजनैतिक दल और किसान संघ बनाये, किसान समाज के सिद्धान्तों का विकास किया जिसका आधार सहकारिता का आन्दोलन था और इस प्रकार कम्यूनिस्ट दल में आने से इनकार किया।

सन् १६३० से १६४५ तक की राजनैतिक घटनाओं के अध्ययन से समाजवादियों को इस परिणाम पर पहुँचना चाहिये कि किसी भी देश की सच्ची श्रमिक जनता को सर्वहारा या मध्यवर्ग या किसानों या किसी एक वर्ग की तानाशाही स्वीकार नहीं हो सकती—केवल किसान सर्वहारा और समस्त प्रजा के जनतांत्रिक शासन का नारा ही उन्हें प्रिय लग सकता है।

परन्तु कम्यूनिस्ट किसान-विरोधी नीति का अनुसरण क्यों करते हैं ?

हम यह नहीं मान सकते कि कम्यूनिस्ट किसानों और प्रजा की क्रान्तिकारी शक्ति को नहीं जानते। उन्होंने बल्कान राज्यों के क्रान्तिकारी

किसान आन्दोलनों के महत्व को अवश्य महसूस किया होगा। इसका कारण यह है कि उनके मन में मार्क्स और लेनिन ने कुछ किसान विरोधी बातें बैठा दी हैं और इसका कारण यह भी है कि रूस में जब बोलशेविक दल ने किसानों की ओर ध्यान दिया तब तक समाजवादी क्रान्तिकारियों ने किसान वर्ग का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया था। इसलिये सन् १९०५ से १९१७ तक कम्यूनिस्ट लोग समाजवादी क्रान्तिकारियों को बदनाम करने तथा उनके नेतृत्व को चुनौती देने और उसे कमजोर करने में लगे रहे।

इन विवादों के बीच समाजवादी क्रान्तिकारी कहते थे कि रूस के किसान सबसे बड़े क्रान्तिकारी थे और क्रान्ति का अगला मोर्चा बना सकते थे, और बोलिशेविक कहते थे कि सर्वहारा ही क्रान्ति के सच्चे अग्रदूत हो सकते हैं और मार्क्स तथा एञ्जिल्स ने सामाजिक क्रान्ति का उत्तरदायित्व उन्हीं पर डाला है। उन्होंने इस बात का निषेध किया कि किसानों के पास भी क्रान्ति के संचालन, संगठन या नेतृत्व की शक्ति है। इसलिये संसार भर की कम्यूनिस्ट पार्टियाँ रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी के अनुभवों और विवादों की दुःखद परम्परा से लदी हुई हैं।

हिन्दुस्तान और चीन की कम्यूनिस्ट पार्टियों के कार्यों के अनुभव ने यह दिखा दिया है कि वे लेनिन के इस मोह से कि मार्क्सवाद केवल सर्वहारा के स्वतंत्रता-संग्राम का सिद्धान्त है, अपने को छुड़ा नहीं सकते। स्तालिन का यह वाक्य कि मार्क्सवाद श्रमिक वर्ग के मौलिक हितों का वैज्ञानिक स्वरूप है, (राल्फ़ फ़ाक्स की कम्यूनिज़्म नामक पुस्तक से उद्धृत) इस बात को सिद्ध करता है कि इस कट्टर मार्क्सवाद में किसानों के लिये कोई स्थान नहीं।

इसलिये हिन्दुस्तान और चीन के किसानों और उनके नेताओं का भ्रम है कि ऐसी कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति, कार्यक्रम या सिद्धान्त में

कोई उत्तम श्रौर प्रगतिशील परिवर्तन हो सकेगा। कम्यूनिस्टों के पास श्रपनी नीति के लिये केवल एक सफ़ाई है कि वे लेनिन की शिक्षा पर ध्यान देते हैं श्रौर यह कि श्रनुभव स्वयं बता देगा कि किसका रास्ता ठीक है।

अध्याय ४

लेनिन और किसान

किसानों के प्रति, एक वर्ग के रूप में जिसमें अपने दल के विकास का और राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की सच्ची योग्यता थी, लेनिन के सच्चे इरादे क्या थे ?

मार्क्स की भाँति लेनिन भी सब वर्ग भेद समाप्त कर देने के लिये उत्सुक थे। उनका विचार था कि केवल एक वर्ग, सर्वहारा वर्ग रहना चाहिये। इसलिये उन्होंने अपनी पुस्तक 'वाम पक्षीय साम्यवाद' में लिखा है:—

"वर्गों को समाप्त करने का यह मतलब नहीं है कि केवल पूँजीपतियों और ज़मींदारों से छुटकारा लिया जाय—इसे तो हमने बहुत आसानी से प्राप्त कर लिया है। इसका मतलब है छोटे सामान तैयार करने वाले कारीगरों से छुटकारा प्राप्त करना और वे सरलता से दबाये या खतम नहीं किये जा सकते।" पृष्ठ २०। इसलिये हमारे किसानों और कारीगरों को कम्यूनिस्ट पार्टी के शासन में खतम किये जाने का न्याय ही मिल सकता है।

लेनिन ने बोलशेविक पार्टी को यह चेतावनी दी है कि, "किसान और कारीगर निम्न उच्चवर्ग की चरित्रहीनता, असंगठन, व्यक्तिवाद और आशा-निराशा की भावुकता के बीच अनिश्चित व्यवहार के साथ सर्वहारा को चारों ओर से घेरे हुये है" आपने उन्हें बताया है कि:—

"महान् केन्द्रीकृत उच्च वर्ग को हराना हज़ारों लाखों छोटे मालिकों को हराने से हज़ारों गुना सरल है। ये छोटे-छोटे मालिक अपने दैनिक अज्ञात और अस्पष्ट कार्यों से उच्चवर्ग द्वारा इच्छित सफलता पाते और उन्हें फिर से जमा देते हैं। जो कोई सर्वहारा के दल के दृढ़ अनुशासन को तनिक भी निर्बल करता है वह सचमुच उच्चवर्ग को सर्वहारा के विरुद्ध सहायता देता है।

कितनी भयङ्कर और वीभत्स चेतावनी है। किसानों को लेनिन कितना तुच्छ समझते थे। वह उनके अनैतिकता फैलानेवाले कार्यों से कितना डरते थे। यदि वे ऐसे विकास विरोधी, किसान--विरोधी और ग़लत परिणाम पर पहुँचे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

लेनिन यह नहीं समझ सके कि किसानों को भी संगठित किया जा सकता है। वे किसानों की जाग्रत क्रान्तिकारी शक्ति और नित्य प्रति बढ़ता हुआ आन्तरिक संगठन तथा नेतृत्व और राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति के लिये उनकी बढ़ती हुई प्रबल इच्छा को वे नहीं समझ सके। इसलिये उनका यह निर्णय ग़लत हुआ कि किसान और प्रजा की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति केवल निम्न उच्चवर्ग की अर्द्ध क्रान्तिकारी प्रवृत्ति है और अविरत सर्वहारा के वर्ग संघर्ष से यह हर प्रकार से भिन्न है। दमन और युद्ध के दिनों में दक्षिण पूर्व और चीन के किसानों ने जो अद्भुत संगठन किया है और लगातार जिस क्रान्तिकारी संघर्ष में लगे रहे हैं उसका अध्ययन करने पर लेनिन का निर्णय ग़लत सिद्ध हो जाता है।

फिर भी लेनिन योरोप के किसानों की अन्तर्शक्ति और क्रान्तिकारी अधीरता को समझते थे।

उन्होंने कहा है, "अनेक योरोपीय देशों में फैली हुई किसान जनता बराबर पीड़ित रही है और जिनके जीवन की स्थिति में कभी-कभी बड़ी जल्दी और तीव्र परिवर्तन होता है और विनाश के सम्मुख वे महान् क्रान्तिकारी हो जाते हैं।

किन्तु सर्वहारा की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये उन्होंने कहा कि यह मालूम होता है कि इन लोगों में किसी मार्ग पर दृढ़ रहने की शक्ति या संगठन नहीं है। उनमें केवल यह योग्यता है कि पूँजीवाद के अत्याचारों से वे उन्मत्त हो जांय। क्या बलकान की किसान क्रान्तियों ने लेनिन के इन परिणामों को ग़लत नहीं सिद्ध किया है। किन्तु लेनिन के इन पक्षपात पूर्ण विचारों का अनुसरण करके बलकान के कम्यूनिस्टों ने वहाँ के किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों में उनका साथ न देकर महान् अनर्थ किया। इसके अतिरिक्त योरोप की जन-क्रान्तियों में किसानों ने कभी भी सर्वहारा की तरह पशोपेश, कमज़ोरी, अनुशासन की कमी, एकता की कमी और असंगठन नहीं दिखाया।

वस्तुतः यदि जर्मनी, फ्रांस, हिन्दुस्तान की किसान क्रान्तियों का निष्पक्ष अध्ययन करने पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि किसानों ने ऐसा संगठन, अनुशासन, दृढ़ता और तत्परता प्रदर्शित की है जैसा उस समय के किसी भी वर्ग के लिये सम्भव था। अँग्रेज़ों के चार्टिस्ट आन्दोलन, पेरिस कम्यून, १८७०-७२ की योरोप की और क्रान्तियों और रूस की सन् १९०५ की क्रान्ति के अध्ययन से यह पता चलेगा कि सर्वहारा में बच्चों की सी क्रान्तिभावना के कारण उपरोक्त सभी गुणों का अभाव था। एक ऐसा भी समय था जब सर्वहारा (मज़दूर) अपनी आरम्भिक राजनैतिक दासता के युग में थे और मालिकों को

दोष न देकर मशीनों को दोष देते थे और भविष्य की ओर न देखकर आना बातों को याद किया करते थे। (राल्फ फाक्स—कम्यूनिज़म १०२६) फिर भो यह एक विचित्र बात है कि लेनिन इतिहास-विरोधी, किसान-विरोधी और सर्वहारा-समर्थक विचारों को ही मज़बूत करते गये।

जब लेनिन ने प्रस्तावित क्रान्ति में सहायता लेने के लिये किसानों की ओर ध्यान दिया तब भी उन्होंने उनको बहुत साधारण स्थान दिया। सन् १६०३ में ग्रामीण ग़रीबों पर लिखते हुये उन्होंने यह आशा की कि वे रूस भर में क्रान्ति कर दें, परन्तु क्या उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व था? कदापि नहीं। उन्हें शहर के मज़दूरों का सहायक बनकर चलना था और अपने अन्तिम युद्ध में उनकी गणना मज़दूरों और किसानों के संघर्ष में दूसरे नम्बर पर ही होती। क्योंकि उनका विश्वास था कि पिछली क्रान्तियाँ इसलिये विफल हुईं कि शहरके मज़दूर उनकी सहायता नहीं कर रहे थे। इस प्रकार वे इस निर्णय पर पहुँचे कि शहरी मज़दूरों में ही क्रान्तियों के संचालन या नेतृत्व की योग्यता है।

फिर भी जब वे समाजवादी क्रान्तिकारियों की आर्थिक नीति का विरोध कर रहे थे, किसानों की योग्यता की प्रशंसा करते हुये अघाते नहीं थे और कहते थे कि किसान बच्चे नहीं हैं और वे अपने कार्यों की खुद देख-रेख कर लेंगे—वे किसी के हुक्म में नहीं चलेंगे।

लेनिन ने किसानों के लिये निर्धारित समाज-वादी क्रान्तिकारियों की नीति का विरोध किया। वे चाहते थे कि किसानों में सहयोग समितियाँ संगठित की जाँय। मीर या ग्राम पंचायत को और ताक़तवर बनाया जाय। किसानों से अपनी ज़मीन बेच देने का अधिकार ले लेना चाहिये और धीरे-धीरे रूस की सारी धरती को जनता की सम्पत्ति कर देना चाहिये। किसानों को ज़मीन खरीदने के लिये हर प्रकार की सुविधा देनी चाहिये जिससे ज़मीन पूँजीपतियों के हाथ से निकल कर सरलता से किसानों के हाथ में आ सके।

लेनिन ने इस कार्य-क्रम का विरोध क्यों किया ? क्या यह कार्य-क्रम किसान विरोधी था। नहीं, लेनिन ने तो कहा कि किसानों को अपनी ज़मीन बेचने का अबाध अधिकार होना चाहिये। और क्यों ? इस ज़मीन की बिक्री से किसे लाभ होता ? ज़मीदार या साहूकार को। उन्होंने पंचायतों के द्वारा जनता की एकता का विरोध किया। क्योंकि सारी ग्रामीण जनता को वे मिलने देना नहीं चाहते थे और डरते थे कि मिल जाने पर शायद ये लोग शहरों के सर्व-हारा का नेतृत्व न स्वीकार करें और किसान नेताओं या समाजवादी क्रान्तकारियों की ताक़त और बढ़ जायगी।

फिर भी वे एकता चाहते थे किन्तु ग्रामीण और शहरों के सर्व-हारा में ही। इस प्रकार उनकी एकता के दृष्टि-कोण में किसानों के लिये कोई स्थान नहीं था।

उच्च वर्ग सामाजिक प्रजातंत्रवादियों की आलोचना करते हुये कहता था कि सामाजिक प्रजातंत्रवादी मध्य वर्ग और ग़रीब किसानों की जायदाद उनसे छीन लेना चाहते हैं। परन्तु लेनिन ने घोषणा की, "यह बिलकुल झूँठ है सामाजिक प्रजातंत्रवादी केवल बड़े ज़मीदारों से ज़मीन छीनना चाहते हैं—केवल उन लोगों से जो मज़दूरों से काम कराते हैं। (पृष्ठ ३०) वे उन लोगों की सम्पत्ति नहीं लेंगे जो मज़दूर न लगा कर स्वयं खेती करते हैं (पृष्ठ ३०) किन्तु उन्होंने भविष्य में उन लोगों के दमन के लिये कुछ अवसर छोड़ दिया जो सर्वहारा के प्रभुत्व का विरोध करते, और यह कहा कि सामाजिक प्रजातंत्रवादी उन लोगों की सहायता नहीं करेंगे जो शोषक वर्ग का साथ देंगे। (पृष्ठ ३०)

दूसरी ही साँस में लेनिन ने अपने पहले के वक्तव्य को यह कह कर समाप्त कर दिया कि यद्यपि उन्होंने समाजवादी क्रान्तकारियों के इस प्रस्ताव का कि किसान अपनी भूमि बेचने न पावें विरोध किया किन्तु जब हम लोग समाजवाद प्राप्त कर लेंगे और जब मजदूर-दल शोषक वर्ग

पर विजय पा लेगा, तो ज़मीन पर जनताका समान अधिकार रहेगा और कोई ज़मीन बेचने नहीं पावेगा।

जिस लक्ष्य को प्राप्ति के लिये वे बाद में प्रयत्न करते, उसके लिये तुरन्त काम करने वालों का उन्होंने विरोध क्यों किया? उनका उत्तर यह था कि आरम्भिक और अन्तिम क़दम में भ्रम नहीं करना चाहिये। किन्तु यदि पहिले और अन्तिम क़दम एक हो सकते थे और तुरन्त लाभकर सिद्ध हो सकते थे तो फिर उन्होंने ऐसा क्यों किया? क्या ऐसा इसलिये था कि सामाजिक प्रजातंत्रवादी समाजवादी क्रान्तिकारी नहीं थे?

उन्होंने 'मीर' की एकता का और किसानों की एकता का भी विरोध किया, क्योंकि समाजवादी क्रान्तिकारियों के ये नारे थे। परन्तु अपने लिये तो वे संयुक्त मोर्चे के पक्षपाती थे चाहे वे सारी ग्रामीण जनता और साहूकारों के भी साथ हों। उन्होंने कहा, "सारी किसान जनता एक होकर आगे बढ़ेगी क्योंकि सभी किसान एक से अधिकार चाहते हैं। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि यदि गांवों के ग़रीब सामन्तवादी परतंत्रता के विरुद्ध धनी किसानों को साथ लेकर नहीं लड़ते तो वे परतंत्र बने रहेंगे और शहरों के मज़दूरों से मिलकर संघर्ष करने की स्वतंत्रता भी नहीं पा सकेंगे।" (पृष्ठ ४०) अवसर-वश हम यह कह देना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट लेनिन के विचारों के प्रतिकूल हमारे संयुक्त मोर्चे के प्रयत्न का विरोध करते हैं और ज़िमीदारों के विरुद्ध धनी ग़रीब सब तरह के किसानों को नहीं मिलना चाहते।

किन्तु लेनिन ने किसान जनता में एकता के इस सिद्धान्त का बहुत दिनों तक समर्थन नहीं किया। वे इस नीति का अनुसरण केवल उसी समय के लिये करना चाहते थे जब तक जनतांत्रिक क्रान्ति के लिये तैयारी होती है।

एक बार जनतांत्रिक क्रान्ति के सफल होने के बाद उन्होंने विभाजन और शासन अथवा किसानों के विभाजन की नीति को ग्रहण किया।

किसान जनता की विशाल शक्ति से छुटकारा पाने के लिये ही उन्होंने यह नीति चलाई थी । उन्होंने यह आदेश दिया:--

"सर्व-हारा को अर्द्ध सर्वहारा जनता की सहायता से सामाजिक क्रान्ति का कार्य पूरा करना चाहिये जिसमे शोषक वर्ग के प्रतिरोध को कुचल दिया जाय और तुच्छ शोषक वर्ग तथा किसानों की अनिश्चितता को समाप्त कर दिया जाय । —'दो नीतियां' ।

उन्होंने १६०३—१६०५ के किसान विरोधी दृष्टि-कोण को नहीं बदला । यह बात इससे सिद्ध होती है कि अप्रैल १६०५ में लेनिन यह बात कह रहे थे कि शक्ति सर्व-हारा और किसानों के निम्नतम वर्ग के हाथ में दी जानी चाहिये–'किसानों पर पुस्तक में स्तालिन द्वारा उद्धत ।

लेनिन ने जान-बूझ कर किसानों के विभाजन की नीति चलाई क्योंकि वे डरते थे कि मध्य-वर्गीय किसान संकोच में पड़ कर शोषक वर्ग का साथ न दे दें । परन्तु ये मध्यम-वर्गीय किसान आखिर थे कोन ?

"थोड़ी सी ज़मीन को जोतने वाले किसान जिनके पास पट्टा या खानगी जायदाद के रूप में भी कुछ ज़मीन होती है । यद्यपि यह ज़मीन बहुत थोड़ी होती है, परन्तु पूँजी-वादी प्रथा में ये किसान अपने खर्च से हर साल कुछ बचाकर जमा करते जाते हैं जो काफी समय में पूँजी बन जाती है और यह लोग बाहर की मजदूरी भी लगाते है (१०-१२-१३) इन लोगों की संख्या लगभग २० लाख है । कुल किसानों की संख्या १ करोड़ होगी जिनमें ३५ लाख ऐसे होंगे जिनके पास १ घोड़ा और ३० लाख ऐसे ग़रीब किसान होंगे जिनके पास एक भी घोड़ा† और कुछ भी ज़मीन नहीं है ।

परन्तु लेनिन सब से ग़रीब किसान उन्हीं को समझते थे जिनके पास एक भी घोड़ा या एक भी एकड़ ज़मीन नहीं है । इसलिये समाजवादी क्रान्ति शहरों के सर्वहारा और तीस लाख ग़रीब किसानों द्वारा ही की जा सकती है ।

---

† रूस में हल घोड़ों द्वारा ही चलाया जाता है ।

किन्तु शेष सत्तर लाख जनता जो किसानों का अधिकांश भाग है, उसका क्या होगा। एक घोड़ा रखने वाले ३५ लाख किसानों को तुच्छ उच्च वर्ग का समझते हुये भी उनसे सहायता ली जा रही थी। २० लाख किसान निष्पक्ष रहेंगे जब कि सर्वहारा संगठित होकर ३५ लाख आधे हल वाले किसानों के साथ संधि करते रहेंगे। शेष १५ लाख धनी किसान या कुलक बुरी तरह पीसे जा रहे थे।

एक बार उन्होंने किसानों से छुटकारा पाने का निश्चय किया जिसके बुरे और अनैतिक प्रभाव से वह बहुत डरते थे। ये सब भयंकर किसान-विरोधी चालें उनको न्याय-पूर्ण मालूम होती थीं, क्योंकि किसानों को चिरन्तन वर्ग के रूप में नहीं सोचते थे उनका पूर्ण विश्वास था कि किसान पूँजीवादी वर्ग के अन्तिम अंश हैं जो अवश्य खतम कर दिये जाने चाहिये क्योंकि ये लोग सर्वहारा की तानाशाही के लिये खतरनाक हैं।

लेनिन ने किसानों द्वारा शक्ति के छीने जाने की संभावना समझ कर कहा:—

"यह संभव है कि किसान सारी ताक़त और सब जमीन लेलें।"

इससे हम देख सकते हैं कि १९१७ की क्रान्ति के समय रूस के किसानों की राजनैतिक जागृति कैसी रही होगी? परन्तु खेद की बात है कि जब कि बोलशेविक सर्वहारा के लिये शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, लेनिन के नेतृत्व के कारण समाजवादी क्रान्तिकारी सर्वहारा के सहयोग में रह कर भी शक्ति प्राप्त करने के लिये किसानों का नेतृत्व नहीं कर सकते थे?

और ये दोनों दल परस्पर इतने विरुद्ध हो गये और उनके प्रभाव-क्षेत्र इस प्रकार अलग हो गये कि बोलशेविक लोग सर्वहारा में बहुत

सर्वप्रिय हुये और समाजवादी क्रान्तिकारी किसानों में वि
शक्तिशाली हुये।

इसलिये लेनिन ने कहा, "मैं इस बात को अच्छी तरह सम
समझता हूं कि किसान सारी शक्ति हथिया लें .....मैं निश्चि
और स्पष्ट रूप से किसानों का कार्य-क्रम बनाता हूं। और खेतों
मजदूरी करने वालों और गरीब किसानो में तथा किसान मा
में अधिक फूट की सम्भावना का ध्यान रख कर यह कार्यक्र
बनाता हूं।

अर्थात् किसानों को शक्ति छीनने से रोकने के लिये उन्होंने किसा
के विभिन्न दलों में भेद बढ़ाने का प्रयत्न किया।

स्टालिन ने लिखा है, गरीब किसान और सर्वहारा की तानाशा
के नये नारे के बिना पर्याप्त शक्तिशाली सेना एकत्रित न कर स
होते और ऐसी सेना न बन सकी होती जो समाजवादी क्रान्तिकारि
और मेनशेविकों की समझौते वाली चालों के ऊपर विजय प्राप्त क
सकती। आगे उन्होंने कहा, हम अक्टूबर तक बढ़े और अक्टूबर
गरीब किसानों के साथ हमने विजय प्राप्त की। कुलकों के विरोध औ
मध्यम किसान वर्ग की पशोपेश का भी हमने सामना किया (स्तालिन

क्या इसका यह मतलब नहीं है कि सर्वहारा की तानाशाही
प्राप्त करने के लिये ही किसानों के विभाजन और उनके नैतिक पत
की यह नीति ग्रहण की गई थी?

स्तालिन ने स्थिति को गलत ढंग से व्यक्त किया है और लेनिन
भी स्वीकार की है कि, "सर्वहारा ने सभी किसानों की सहायता
शक्ति प्राप्त की थी" जब पोक्रोव्रवस्की ने यह आपत्ति की तो स्तालि
ने जवाब दिया कि, "यह बात बिलकुल ठीक है कि हमने सभी किसान
की थोड़ी थोड़ी सहायता से शक्ति प्राप्त की।" गृहयुद्ध के दिनों

किसानों द्वारा दी हुई अमूल्य सहायता को वे कैसे भूल सकते थे ? किन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि सारी किसान जनता ने अक्तूबर में और उसके बाद ही हमारी सहायता की और हम अक्तूबर क्रान्ति को उनकी सहायता से ही पूर्ण कर सके।

पर इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट है कि सारी किसान जनता सर्वहारा की तानाशाही के स्थापित होने में और सर्वहारा द्वारा सारी शक्ति के हथियाने में सहायता नहीं कर सकती थी।

लेनिन यह जानते थे कि रूस के किसान सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना में मदद नहीं कर सकते इसलिये उन्होंने किसानों में भेद उत्पन्न कर दिया और उन्हें आपस में लड़ा दिया।

परन्तु क्या किसी भी नैतिक मानदण्ड से किसानों के विरुद्ध ऐसे भय करना और ऐसी चालों को दिल में रखना उचित था ? उनसे यह कहना कि वे समाजवादी क्रान्तिकारियों का खेती सम्बंधी कार्य-क्रम में भी सहयोग न दे, फिर उन्हें ज़ारशाही निरंकुश शासन के विरुद्ध लड़ने के लिये संगठित करना, उन्हें विश्वास दिलाना कि अक्तूबर के पहिले और बाद में किसानों और सर्वहारा की सम्मिलित तानाशाही स्थापित की जायगी और फिर किसानों के विभाजन का ग्रहण करना और यह बताना कि वे सर्वहारा के साथ सभी किसानों को नहीं बल्कि सब से ग़रीब किसानों को ही सम्मिलित करना चाहते थे—यह सब छल और विश्वासघात था।

परन्तु कहते हैं प्रेम और युद्ध में सब कुछ उचित होता है और लेनिन तथा स्तालिन सर्वहारा के लिये शक्ति प्राप्त करने के युद्ध में ही लगे थे, किसानों के लिये नहीं। और वे एक नीतिपूर्ण नारे की मौलिक विचार के दृष्टिकोण से प्रत्येक निर्णय करते थे। यह नारा था—क्रांति के विशेष स्तर पर शक्ति का प्रश्न (किस वर्ग को

जनता की भावनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते, चाहे हम उनके साथ सहमत हों या नहीं"

किसान कांग्रेस वालों के प्रति कम्यूनिस्ट पार्टी के लोग भी ठीक यही नीति ग्रहण कर रहे हैं। वे किसान कांग्रेस वालों के वर्तमान कार्यक्रम का विरोध करते हैं परन्तु उनके पिछले कार्यक्रम की नक़ल करते और उसे अपनी विशेष देन कहते हैं।

परन्तु यह समझौता बहुत थोड़े दिन तक ही टिकाऊ रह सका। बाद के तीन सालों में जब ट्राट्स्की के सैनिक निरीक्षण में किसानों का पैदा किया हुआ अन्न बिना दाम या बदले की किसी वस्तु के लिया जाने लगा, किसानों को विवश होकर सर्वहारा की तानाशाही के विरुद्ध होना पड़ा। उसके बाद लेनिन ने किसानों के साथ दूसरे समझौते के रूप में थोड़े दिनों के लिये नई आर्थिक नीति रक्खी और कुछ दिनों तक परस्पर समझौता रहा।

इस प्रकार के सभी समझौते मान लिये गये। क्योंकि कम्यूनिस्ट पार्टी तब तक अपने को सुरक्षित समझती थी जब तक सर्वहारा की तानाशाही क़ायम रहे और किसान अपने निजी आर्थिक और राजनैतिक संगठन करने से रोके जा सकें तथा समाजवादी क्रान्तिकारियों के राजनैतिक नेतृत्व को छिन्न भिन्न करके और किसान संघों और किसान संघवाद को रोक करके अपना प्रभुत्व स्थायी रक्खा जाय।

श्री प्रीबिशेरिख् ने अपनी पुस्तक लिविङ्ग स्पेस में यह दिखलाया है कि बोलशेविकों ने किसानों को किस प्रकार शक्ति से बाहर रक्खा।

"अधिक से अधिक उत्साही कम्यूनिस्ट भी यह नहीं कह सकता कि रूस के किसानों का वहाँ के शासन कार्य में कोई भी प्रभाव है। और किसान मजदूरों को यह नहीं बताता कि वे अपने कलकारखाने

कैसे चलावें बल्कि मजदूर किसानों को यह बताते हैं कि अपनी खेती का काम कैसे करें ?"

यदि जनतांत्रिक समाजवादी समाज की राजनैतिक शक्ति में किसानों को अपना उचित भाग लेना है तो सर्वहारा की तानाशाही का विरोध करना चाहिये। यह विरोध केवल सिद्धान्तों या राजनैतिक कारणों पर ही नहीं आधारित है न तो इसका कारण कोई काल्पनिक भय है जो किसानों को सर्वहारा की तानाशाही के स्वीकार करने से रोकता है। उनके विरोध का आधार है—

शासक सर्वहारा के द्वारा या कम्यूनिस्ट पार्टी के द्वारा किसानों के प्रति निरंकुश और निर्दयतापूर्ण व्यवहार।

हम निश्चय रूप से इस बात को मानते हैं कि कम्यूनिस्ट पार्टी ने रूस की किसान जनता के प्रति ग़द्दारी की। यदि लेनिन की पचासवीं वर्ष गांठ पर दिये गये स्तालिन के भाषण पर निर्भर करें तो हम यह कह सकते हैं कि बोलशेविकों ने वादा किया कि किसानों और सर्वहारा की क्रान्तिकारी तानाशाही स्थापित कर दी गई है। फिर भी स्तालिन ने सन् १९२७ में लिखा था कि प्रकट रूप से सर्वहारा और ग़रीब किसानों का अधिनायकत्व समाप्त होगया।

स्तालिन का बाद का वक्तव्य ही ठीक है फिर भी ग़रीब किसानों या किसानमात्र का नाम उसमें शामिल रक्खा गया जिससे संसार की किसान जनता को धोखा दिया जा सके और रूस के किसान भी इस भ्रम में पड़े रहें।

लेनिन ने स्वयं लिखा है, "अक्तूबर क्रान्ति के ठीक मौक़े पर हम लोगों ने तुच्छ उच्च वर्गीय किसानों के साथ बहुत ही सफल राजनैतिक गुट बना लिया और समाजवादी क्रान्तिकारियों का किसान कार्यक्रम बिना किसी भी परिवर्तन के स्वीकार कर लिया। आश्चर्य की बात यह है लेनिन इस कार्यक्रम की निन्दा सन् १९०३ से ही करते आरहे थे (उनकी पुस्तक गांवों के ग़रीबों से देखिये)। हमने एक पक्का समझौता किया जिससे हम किसानों के सामने यह सिद्ध कर सकें कि हम उनको दबाना नहीं चाहते बल्कि उनके साथ समझौता करना चाहते हैं। और इस बीच वे बराबर अपनी पार्टी को सलाह देते थे कि किसानों में फूट डाल दो। स्तालिन भी उनसे छुटकारा पाने के लिये लेनिन के निश्चय को कार्यान्वित करते रहते थे। उसी समय हम वामपक्षीय समाजवादी क्रान्तिकारियों के साथ एक राजनैतिक गुट्ट बनाने में सफल हुये और एक शासन में काम करने के लिये भी तैयार थे।

इस प्रकार लेनिन को उस एकमात्र राजनैतिक दल के विभाजन में सफलता मिल गई जिसने नेतृत्व के लिये शिक्षित कार्यकर्ता तैयार कर लिया था विस्तृत राजनैतिक संगठन कर लिया था और किसानों के सामने एक राजनैतिक कार्यक्रम रक्खा था। लेनिन ने उस दल के कुछ वामपक्षीय लोगों को मंत्रिमण्डल में स्थान देने का वादा करके अपनी ओर कर लिया था। जब ब्रेस्ट लिटोवस्क संधि के प्रश्न पर इन लोगों से मतभेद हुआ तो लेनिन ने उन्हें अलग कर देने में कोई कठिनाई नहीं महसूस की क्योंकि अब उन्हें इन लोगों की आवश्यकता नहीं रही थी और किसानों में भी अपने दल के छोड़ने के कारण इनकी धाक या प्रतिष्ठा बिलकुल नहीं रह गई थी।

इस लेनिनवादी व्यवहार का अनुकरण करके अपने प्रतियोगियों को नष्ट करके कम्यूनिस्ट भी अपने प्रतिस्पर्द्धियों के कार्यक्रम पर आक्षेप करते हैं चाहे उनमें कुछ भी गुण-दोष हों परन्तु बाद में फिर वे उसी कार्यक्रम को पूर्ण रूप से अपना लेते हैं। हमने देखा है कि लेनिन ने किस प्रकार समाजवादी क्रान्तिकारियों के किसान कार्यक्रम का विरोध किया, क्योंकि तब तक बोलशेविकों का किसानों में कोई प्रभाव नहीं था। परन्तु जब उन्होंने शक्ति अपने हाथ में ली और समाजवादी क्रान्तिकारियों को दबा दिया तो किसानों को कांग्रेस के २४२ आदेशों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया और इन्हें अस्थायी कानून का रूप दे दिया। फिर भी विजयी सर्वहारा वर्ग के नेताओं को असन्तोष रहा उनको लेनिन ने यह जवाब दिया:—

"मैं ऐसी आवाजें सुनता हूं कि किसानों के प्रति आदेशों को समाजवादी क्रान्तिकारियों ने बनाया था। परन्तु इससे क्या होता है? इसकी क्यों चिन्ता की जाय कि अमुक कार्यक्रम किसने बनाया है। प्रजातांत्रिक सरकार के रूप में हम सामान्य

खतम करके किसके हाथ में शक्ति आरही है ; पृष्ठ ३-स्तालिन "किसानों के विषय में"

इसका क्या निश्चय है कि दूसरे देशों की कम्यूनिस्ट पार्टियाँ संसार के किसानों को इसी अन्याय पूर्ण और गलत तरीके पर धोखा न देंगी ?

जरा देखिये कि गरीब किसान भी किस तरह गिराये गये ?

स्तालिन ने स्वयं १६२७ में यह स्वीकार किया कि रूस सर्वहारा और गरीब किसानों की तानाशाही नहीं स्थापित कर रहा था। आगे उन्होंने लिखा है,

"अक्तूबर तक हम लोग सर्वहारा तथा गरीब किसानों की तानाशाही के नारे के साथ काम करते रहे और अक्तूबर में हमने इस नीति को स्पष्टतः कार्यान्वित किया। क्योंकि हमने वामपक्षीय समाजवादी क्रान्तिकारियों से सहयोग करके एक गुट बना लिया था। यद्यपि हम बोलशेविकों के बहुमत में होने के कारण सर्वहारा की तानाशाही वस्तुतः स्थापित हो चुकी थी। इसके बाद समाजवादी क्रान्तिकारियों के गुट से हमारा झगड़ा होगया और वे अलग हो गये। अब सर्वहारा की तानाशाही पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई और नेतृत्व बिलकुल एक पार्टी—हमारी पार्टी के हाथ में आगया जो राज्य के निरीक्षण में किसी दूसरे दल से सहयोग नहीं कर सकती—इसी को हम सर्वहारा की तानाशाही कहते हैं। (पृष्ठ ६ स्तालिन की पुस्तक किसानों के विषय में' से)

परन्तु समाज वादी जनता को यह विश्वास दिलाया गया था कि बोलशेविक सर्वहारा और समस्त किसान जनता की तानाशाही के लिये लड़ रहे थे। यह बात अप्रैल १६१७ में पेट्रोग्राद कान्फ्रेंस में दिये हुए लेनिन के भाषण से स्पष्ट हो जाती है। इस घोषणा के

बावजूद कम्यूनिस्टों ने सब श्रमिकों और उनकी पार्टियों को हटा कर केवल एक दल का अधिनायकत्व स्थापित किया। हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्ट भारतीय कांग्रस की इस लिये निन्दा करते हैं कि कांग्रेस अपने अन्तर्गत और दलों को नहीं रखना चाहती। यह उनकी दुरङ्गी नीति है। और उनके दो नैतिक मानदण्ड हैं एक अपने लिये—एक दूसरों के लिये।

इस प्रकार गरीब किसानों के हाथ में भी कुछ ताकत न रह पाई : उनको शक्ति का अपना न्यायपूर्ण भाग भी न मिला। क्या उन कारीगरों और किसानों की भी वही दशा नहीं होगी जो उपनिवेशों में कम्यूनिस्टों के चंगुल में फसेंगे ? क्या उन लोगों के नेताओं की दशा जो कम्यूनिस्टों के ताकत की साझीदारी के प्रलोभन में पड़ते हैं रूस के वामपक्षीय समाजवादी क्रान्तिकारियों की ही दशा नहीं होगी ?

जब तक यह समझा गया कि क्रान्तिकारी मजदूरों को अगर गरीब किसानों की मदद मिल गई तो वे पूँजीपतियों के विरोध को समाप्त कर सकेंगे तब तक गरीब किसानों की पूछ हुई। ज्यों ही उनकी जरूरत पूरी हो गई वे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंके गये। क्या उपनिवेशों कम्यूनिस्टों के गुमराह साथियों के साथ इससे अच्छा व्यवहार होगा ? सिर्फ ध्यान देने की बात है कि किस तरह चीन के कम्यूनिस्ट वहां का शासन किसानों के लाल चीन का शासन उनके नाम में नहीं वरन् संसार के सर्वहारा के नाम में चलाते हैं। इससे यह विश्वास कि कम्यूनिस्टो का निश्चय है कि वे हर एक वर्ग को सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना के लिये ही स्तैमाल करना चाहते हैं। किन्तु क्या सबसे गरीब किसान सर्वहारा वर्ग में सम्मिलित नहीं किये जाते, और सर्वहारा की तानाशाही में नहीं लिये जाते ! नहीं उन्हें केवल अर्ध सर्वहारा ही समझा जाता है।

अध्याय ६

सोवियत शासन और किसान

इस अध्याय में हम विषयान्तर से सामूहिककरण और मूल्य निर्द्धारण के दो पक्षों को लेकर सोवियत रूस के किसान-विरोधी तानाशाही शासन का निरीक्षण करेंगे।

यह सच है कि लेनिन कृषि के सहयोगीकरण के पक्ष में थे। वे एञ्जिल्स के इस सन्देश से भी कृषि का पुनर्सङ्गठन सहयोग से और लोगों की इच्छा से होना चाहिये, परिचित थे।

लेनिन ने विशेषकर यह चेतावनी दी:—

यहाँ (किसानों और खेती के विषय में) ऊपरी तह ही नहीं है जो काट दी जा सके और इमारत तथा नींव सुरक्षित बनी रहे। शहरों के पूँजीपतियों की जो ऊपरी तह है, वह यहाँ नहीं है। यहाँ पर बल प्रयोग बहुत हानिकारक होगा इससे सारा कार्य ही नष्ट हो जायगा यह वर्ग बहुत विशाल है इसमें लाखों व्यक्ति हैं। योरोप में भी जहाँ यह सोचना बहुत आसान है, सबसे बड़े क्रान्तिकारों ने भी

मध्यमवर्गीय किसानों के साथ बल प्रयोग का प्रस्ताव कभी नहीं किया है।—लेनिन ग्रंथावली–भाग ८.

बोलशेविक पार्टी के अधिकांश लोगों ने केवल इस चेतावनी के विरुद्ध ही कार्य किया। पहले तो मार्क्सवाद, लेनिन के पक्षपात पूर्ण विचारों और ट्राटस्की के सैनिकवाद के कारण ये लोग पागलों की तरह किसानों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये। ये लोग अधिकतर शहरों में रहने वाले थे। सर्वहारा की भूख को ये लोग समझते थे किन्तु अनाज के बदले किसानों की तैयार माल की माँग को नहीं समझ सकते थे। क्योंकि वे समाजवादी क्रान्तिकारियों के विरुद्ध थे, इसलिये उन्होंने निश्चित किया कि किसानों को दबा दिया जाय। इसके अतिरिक्त वे असीम शक्ति से उन्मत्त हो रहे थे और किसानों से घृणा करते थे। चौथी बात यह थी कि लेनिन की विभाजन-नीति बाद में और बिगड़ गई और न केवल प्रतिक्रियावादी शक्तियों को वरन् हर एक किसान मण्डल को जो वैधानिक और व्यापारिक नीति की आलोचना करने का साहस करता था, नष्ट करने के लिये प्रयुक्त हुई।

उनकी शक्ति बढ़ाने के लिये स्तालिन ने कुलकों को तथा सामूहिक कृषि के विरोधियों को ख़तम करने का अपना कार्यक्रम चलाया। इसके बाद किसी आदमी को जो बोलशेविकों के सामूहिक कृषि के कार्य में ज़रा भी बाधा डालते थे उनको कुलक कहकर दण्डित किया जाता था और साइबेरिया भेजकर या और दूसरे निर्दय ढंगों से उन्हें ख़तम किया जाता था।

लाखों निर्दोष और ईमानदार किसान जो लेनिन के समाश्वासन में विश्वास करते थे इस प्रकार दण्डित हुये और कुलक कह कर दोषी ठहराये गये। उनकी ज़मीन ज़ब्त हो गई और वे अपने घर से

निकाल दिये गये और निर्वासित कर दिये गये। लेनिन का उपदेश हवा में उड़ गया :—

"आदेशों को व्यवहार में लाकर अनुभव से यह सिद्ध हो जायगा और किसान स्वयं समझ लेंगे कि सच्ची नीति क्या है।" उनका यह आश्वासन भी, कि यदि किसान समाजवादी क्रान्तिकारियों का अनुसरण करते हैं तो उन्हें ऐसा करने देना चाहिये, भुला दिया गया।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सन् १९२७ से ३७ के दश वर्षों में सर्वहारा की तानाशाहीऔर रूस के किसानों में बिना घोषणा किये भी एक प्रकार का युद्ध चलता रहा। क्रुद्ध किसानों ने इस अन्याय पूर्ण बलप्रयोग के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

सिडनी और बीट्रिस वेब ने स्वीकार किया है कि सोवियत् रूस के विभिन्न भागों में जहाँ बल प्रयोग द्वारा सामूहिक कृषि चलाई गई थी, तोड़ फोड़ हो गया।

सोवियत् सरकार को सन् १९२९ ई० से अकाल का नहीं वरन् किसानों की सामान्य हड़ताल का सामना करना पड़ा।

रूस के कटु अनुभव कष्ट और अकाल के बाद स्टालिन को यह स्वीकार करना पड़ा कि फ़सलों की बुआई कटाई में बहुत कमी आ गई और फिर से निरंकुश शासन स्थापित करना पड़ा, क्रान्तिकारी विधानों को तोड़ना पडा, किसानों के घरों पर छापे पड़े, गैर क़ानूनी तलाशियाँ ली गईं और इससे किसानों और मज़दूरों की संधि खतरे में पड़ गई। (स्ट्रास में उद्धृत)

नवीन आर्थिक नीति के छोड़ने पर जब से पंचवर्षीय योजनायें आरम्भ की गईं, स्तालिन ने कुलकों को वर्ग रूप में समाप्त करने की नीति ग्रहण की। और ठोस सामूहिक कृषि के आधार पर उन्होंने

इस वर्ग को समाप्त किया। फलतः किसानों के विभाजन और एक के बाद दूसरे को समाप्त करने के बड़े घातक परिणाम हुये। सन् १६२६ की कांग्रेस में तथा कथित ग़रीब और मध्यम वर्ग के किसानों में इस नीति के औचित्य का समर्थन किया, ऐसा कहा जाता है। किन्तु दूसरे वर्ष की कांग्रेस में स्तालिन को स्वीकार करना पड़ा कि "किसानों ने सामूहिक कृषि के कार्यक्रम को एकाएक स्वीकार नहीं किया। समाजवाद की तरफ़ जनता की प्रवृत्ति करने के लिये नारों से काम नहीं चलता।"

यदि इस हार की स्वीकृति के बाद बोलशेविक दल और उनके तूफ़ानी दलों ने अनेक अत्याचार किये और स्तालिन रूस के किसानों की विपत्ति के लिये उत्तरदायित्व टाल नहीं सकते।

श्री स्ट्रास ने जो कोई किसान समर्थक नहीं, सन् १६४१ में जो आँकड़े दिये हैं उनसे मालूम होता है कि सन् १६१३ में बेची हुई वस्तु का भाग ५० प्रतिशत् था, १६२७ में २० प्रतिशत होगया। किन्तु मध्यम वर्गीय किसानों का भाग २३-४ प्रतिशत से ७४ प्रतिशत हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि सन् १६२७ में कुलकों का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रह गया था और ग़रीब और मध्यमवर्गीय किसानों का ही सबसे ऊँचा स्थान था। स्तालिन के नये सामूहिककरण की नीति का प्रभाव इन्हीं ग़रीब और मध्यमवर्गीय किसानों के ऊपर पड़ा होगा।

रूस के किसानों की विशाल जनता के ऊपर आक्रमण के लिये कुलकों का तो एक बहाना था। सोवियत की संगठित और निरंकुश शक्तियों के सामने असंगठित किसान टिक नहीं सके। इसीलिये कैलिनीन ने डींग मारी है कि खेती की उपज का ८५.३ प्रतिशत उत्पन्न करने वाले किसानों की पराजय हो गई, किन्तु यह तो उनके असंगठन के कारण थी।

स्ट्रास ने लिखा है कि, "सोवियत सरकार कुलक की मनमानी परिभाषा करती थी और परिस्थितियों के अनुसार उसे बदल देती थी पहले तो किसानों ने व्यर्थ में सहयोग देने से इनकार कर दिया किन्तु बाद में सामूहिक कृषि की ओर उन्होंने ध्यान बटाया।

"खेती के पुनर्सङ्गठन के लिये सरकारी योजना को स्वीकार करने वाले लोगों को सरकार कोई स्पष्ट लाभ नहीं दे सकी, इसके विरुद्ध वह हर एक व्यक्ति को जो उस योजना का विरोध करता दण्ड देने लगी। मध्यमवर्ग के किसान कोई बदला लेने में असमर्थ थे। धीरे धीरे सरकार की क्रूर हिंसा ने भयंकर रूप धारण कर लिया।

बहुत कम दामों पर ग़ल्ले की अनिवार्य वसूली की जाती थी और कल कारखाने की चीज़ों का दाम बहुत ज़्यादा था इसलिये सामूहिक कृषि के प्रचार के लिये सरकार को बलप्रयोग करना पड़ता था। सर्वहारा लेखक स्ट्रास ने स्वीकार किया है कि रूसी समाजवाद की पहली दो दशाब्दियों में युद्धकालीन रूस के पुनर्निमाण के लिये किये हुये त्याग का सबसे अधिक भार उठाना पड़ा। उनकी मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये राज्य उनकी कोई चिन्ता नहीं करता था। किन्तु शहरों के निवासियों और लाल सेना के लिये भोजन की व्यवस्था के लिये सरकार सदैव बहुत चिन्तित रहती थी। सर्वहारा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सरकार जनता को धोखा देने की अनेक चालें चलती थी। और सरकार के स्वामी सर्वहारा तथा उनके सौतले लड़के किसानों के द्वारा पैदा किये हुये तैयार माल और खेती, उत्पत्ति में विनिमय के दर में बड़ा अन्तर होता था। सिडनी और बीट्रिस वेब ने भी इस बात को स्वीकार किया है। भाग १, पृष्ठ २३८

खेती के सामूहिक-करण और किसानों के विरुद्ध प्रति-क्रान्ति की अन्तिम विजय के पश्चात् स्तालिन को भी दूसरी पंचवार्षिक योजना में

लेनिन और ट्राट्स्की द्वारा चलाई हुई खेती की वस्तुओं का मूल्य घटा रखने और कारखाने के माल का दाम बढ़ाने की नीति स्वीकार करनी पड़ी।

अन्त में स्ट्रास ने लिखा है कि किसानों की क्रयशक्ति बहुत घटा दी गई। शहरों में कारखाने की उत्पन्न चीज़ों के दाम से गांव में उनका दाम ज़्यादा कर दिया गया था, फिर भी किसानों की मांग की पूर्ति बहुत कम होती थी। इस प्रकार किसान दूसरे विश्व-युद्ध तक बिलकुल ग़रीब रक्खे गये जिससे वे सर्वहारा और शहरों की जनता को ज़्यादा ताक़तवर और समृद्ध बना सकें। तथा उन्हें पर्याप्त भोजन देसकें। इसलिये किसानों ने यह नारा बुलन्द किया "सर्वहारा की तानाशाही से होशियार"

किसानों के प्रति दमन के सम्बन्ध में स्तालिन का वक्तव्य:—

स्वयं स्तालिन ने 'सामूहिक कृषि के साथियों के प्रति जवाब' नामक वक्तव्य में जो बातें स्वीकार की हैं उन्हें हम इसलिये देते हैं कि लोग यह न सोचें कि हम केवल स्वार्थपूर्ण सोवियत विरोधी प्रचार कर रहे हैं:—

उन्होंने छोटे खेतों के विरुद्ध लेनिन को उद्धृत किया है:—

"इसमें ग़रीबी और दमन से मानवता के निर्वाण का कोई रास्ता नहीं है।

'यदि हम स्वतन्त्र भूमि पर स्वतंत्र किसान के रूप में भी छोटे छोटे खेतों पर काम करें तो हमें अनिवार्य रूप से विनाश का सामना करना पड़ेगा।

'केवल सामूहिक, सहकारी (Artel) श्रम से उस संकट से उबरना असम्भव है जिसमें साम्रज्यवादी युद्ध ने हमें धकेल दिया है।

दूसरे विश्व-युद्ध का भय था। साधारण मार्क्स लेनिन वादी किसान-विरोधी पक्षपात पूर्ण विचारों और सर्वहारा की अनियन्त्रित

राजनैतिक शाक्त के कारण भी किसानों के प्रति अत्याचार हुआ। भोजन के लिये सर्वहारा और शहर वालों की मांग बढ़ रही थी और खपत का माल तैयार करने की कारखानों में ताक़त नहीं थी। जिसे वह किसानों के ग़ल्ले के बदले में दे सकें। बोलशेविक पार्टी और सोवियत शासन के किसान-विरोधी कार्यों का यही उद्देश्य था।

किसानों के विरुद्ध हर तरह के अत्याचारों और शरारतों के बाद स्तालिन को ध्यान आया और उन्होंने इन सबके प्रति खेद प्रकट किया और भविष्य के अति उत्साही सामूहिक कृषिवालों को चेतावनी दी कि लेनिन की शिक्षा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये थी।

लेनिन ने कहा, कृषि की पंचायत किसानों की स्वेच्छा से बननी चाहिये। सामूहिक कृषि की ओर प्रगति भी स्वेच्छा से ही करनी चाहिये। किसानों मज़दूरों की सरकार को किसी तरह की जबर्दस्ती नहीं करनी चाहिये। ('किसान मज़दूर सरकार' का प्रयोग प्रचार के लिये किया हुआ मालूम होता है)

मजदूर वर्ग जिसके हाथ में राज्य की शक्ति है किसानों के सामने अपनी नीति की सत्यता तभी सिद्ध कर सकता है और लाखों किसानों का सहयोग तभी पा सकता है यदि हम सक्रिय रूप में सामूहिक और सहकारी खेती की सफलता सिद्ध कर दें—"किसानों के विषय में नामक पुस्तक से स्तालिनद्वारा उद्धृत"

जब किसानों को समझने योग्य क्रियात्मक रूप में हम यह सिद्ध कर सकें कि सामूहिक और सहकारी कृषि आवश्यक और उपयोगी है, तभी इस विशाल किसानों के देश रूस में समाजवादी खेती के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति होगी।

स्तालिन ने यह स्वीकार किया है कि स्वेच्छा-पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के नियम का उल्लंघन किया गया है। पृष्ठ ६०.

यह भुला दिया गया कि घुड़सवारों द्वारा छाप मारना जो सैनिक समस्याओं को सुलझाने में उपयोगी हो सकता है, सामूहिक कृषि के विकास में बहुत अनर्थकारी है।

इस ग़लती का मूल मध्यम श्रेणी वाले किसानों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण में था। लोग यह भूल गये कि सोवियत रूस में भिन्न भिन्न प्रकार के भूभाग हैं जिनके आर्थिक स्तर और सांस्कृतिक विकास भिन्न भिन्न प्रकार के हैं।

हमारे कुछ साथी, सामूहिक कृषि आन्दोलन की आरम्भिक सफलता से इस तरह उन्मत्त हो गये कि वे लेनिन के उपदेशों और सन् १९३० के केन्द्रीयसमिति के निर्णय को भूल गये जिसके अनुसार सामूहिक कृषि की योजना का समय १९३१-३३ तक बढ़ाया गया था।

सामूहिक कृषि की योजना के अन्धानुकरण का उदाहरण देकर स्तालिन ने अपने वक्तव्य का अन्त इस प्रकार किया है:—

"सामूहिक कृषि की इतनी तेज़ गति को ध्यान में रखते हुये उन ज़िलों के ऊपर बहुत अधिक शासन सम्बन्धी दबाव डाला गया जो सामूहिक करण के लिये अधिक तैयार जिलों से किसी भी तरह पीछे थे। उनमें स्वयं सामूहिककरण के लिये उत्साह की जो कमी थी और तेज़ विकास के मार्ग में जो बाधाएँ थी उन्हें ज़बर्दस्ती दूर किया गया।

इस शासनसम्बन्धी दबाव की की तीव्रता के अर्थ का अनुमान भारतवासी बहुत सरलता से कर सकते हैं जिन्होंने अंग्रेज़ी शासन के युद्ध-ऋण या सेविङ्ग सर्टीफिकेट के लिये चन्दा इकट्ठा करने के प्रयत्नों का उत्साह देखा है।

स्तालिन ने अपने दल या सरकार द्वारा की हुई ज़्यादतिओं पर विचार करते हुये लिखा है:—

"कभी कभी सफलता से लोग पागल और घमण्डी हो जाते हैं। यह बात एक ऐसी पार्टी के लिये और भी लागू होती है। जिसकी शक्ति और प्रतिष्ठा असीम है। ऐसी हालत में आदेशों और प्रस्तावों की सर्वशक्तिमत्ता और निरंकुशता में विश्वास करना बहुत सम्भव है।

"मैं केवल स्थानीय कार्यकर्ताओं को ध्यान में रखकर ही यह बात नहीं कह रहा हूं, बल्कि कुछ (रीजनल) प्रान्त विशेष की कमेटियों तथा केन्द्रीय कमेटी के सदस्यों के कारनामे भी हमारे सामने हैं सामूहिक कृषि आन्दोलन में इन्हीं स्थानों से अधिकांश गलतियाँ उत्पन्न होती हैं। १९३० तक केन्द्रीय कमेटी ने इन गलतियों की गम्भीरता पर ध्यान नहीं दिया और हमारे साथियों के एक दल ने आरम्भिक विजय की सफलता से अन्धे होकर लेनिनवाद के मार्ग को छोड़ दिया।"

सन् १९३० तक रूस के किसानों पर जो दमन और अत्याचार हुये उनका अनुमान कौन कर सकता है? अनेकों लाख किसानों को अपार कष्टों और निराशा तथा विपत्ति का सामना करना पड़ा होगा और वे शक्ति से उन्मत्त किसान-विरोधी (सर्वहारा) दल की कृपा के पात्र रहे होंगे।

हमारी यह आपत्ति नहीं कि (Artel) खेती का सामूहिक करण आर्टेल प्रणाली पर क्यों किया गया। परन्तु हमारी शिकायत यह है कि प्रयोग, और सहकारी खेती से होने वाले लाभ हानि के प्रदर्शन की लेनिनवादी नीति छोड़ दी गई। और स्तालिन की कम्यूनिस्ट पार्टी ने 'स्वेच्छापूर्वक सामूहिक करण की नीति' पर जोर नहीं दिया। हमें दुःख है कि ये अत्याचार इसलिये किये गये कि सर्वहारा की तानाशाही में किसानों की कोई आवाज नहीं थी और किसी भी समय किसी भी तरह का आत्म-निर्णय करने का उन्हें अधिकार नहीं था और वे संगठित और स्वतंत्र रूप में यह नहीं सोच सकते थे कि वे आर्टेल

प्रणाली की सामूहिक खेती वे कैसे, किस हद तक और कहाँ आरम्भ करें।

यदि सोवियत रूस की सरकार सर्वहारा की तानाशाही न होकर किसान मजदूरों की प्रजातांत्रिक सरकार होती तो यह सब अवर्णनीय अत्याचार न हो सकता और किसानों का यह भयंकर दमन रुक जाता। यदि किसान मजदूरों की प्रजातांत्रिक तानाशाही सफलता पूर्वक कार्य करती रही होती तो किसान भी सुखी होते।

परन्तु वैसी स्थिति में सर्वहारा की तानाशाही किसानों के दमन की बुराई को दूर नहीं कर सकती थी। क्योंकि जब शक्ति अबाध रूप में होती है तो अपने शिकार पर मनमाना अत्याचार किया जाता है। और ऐसा तब और भी होता है जब पीड़ितों और पीड़कों के स्वार्थ में परस्पर विरोध हो। १६२६-३० के सोवियत रूस में सर्वहारा शासकों के पास इतना सामान या धन नहीं था कि वे किसानों से ज़बर्दस्ती लिये हुये अनाज और कच्चे माल के बदले में कुछ उन्हें दे सकें। इसलिये स्तालिन घटना और समय के बाद केवल दार्शनिक सूझ बनाकर मुक्त होना चाहते थे और उनकी पार्टी तथा सरकार किसानों के साथ बुरा से बुरा व्यवहार करती थी और शक्ति के लोभ तथा अधिनायकत्व की वासना से उसने (रूस की सरकार) किसानों को अपना शत्रु बना लिया था।

इसलिये हम संसार के किसानों को चेतावनी देते हैं, 'सर्वहारा की तानाशाही से सावधान'।

किन्तु भयङ्कर से भयङ्कर दुःख के अन्त में सुख मिलता है। सर्वहारा के साथ किसानों के लम्बे संघर्ष के बाद एक समझौता हुआ। सर्वहारा की राजनैतिक शक्ति तो क़ायम रही और उन्हें यह निश्चय होगया कि कर, ट्रैक्टरों और हारवेस्टरों (फ़सल काटने की मशीन) आदि के किराये के रूप में उन्हें काफ़ी अनाज मिलता रहेगा। क्योंकि

यह किराया ग़ल्ले के रूप में ही लिया जाता था और इसके अतिरिक्त बाजार से भी ग़ल्ला खरीदा जाता था। किसानों को व्यक्तिगत जायदाद कुछ जानवर रखने तथा बाग़ बग़ीचे लगाने की सुविधा दी गई।

किन्तु आज भी किसानों को अपने वर्ग संघों में या दलों में संगठित होने से रोका जाता है और राजनैतिक कारणों से बोलशेविक पार्टी के बाहर वे संगठित नहीं हो सकते थे। जब तक उन्हें कम्यूनिस्ट पार्टी में सम्मिलित होने के अलावा कोई चारा नहीं है, जब तक किसान के रूप में देश के शासन में उनका कोई हाथ नहीं होगा, तब तक सावियत शासन केवल एक दलीय, एक वर्गीय और किसान-विरोधी शासन कहा जायगा।

हमें बताया जाता है कि पार्टी के बाहर के योग्य लोगों को सामूहिक खेतों पर जिम्मेदारी का काम दिया जाता है और उन्हें बराबर ऊँचे पद मिल रहे हैं। पर इस प्रकार की कृपा वैसी ही है जैसी अमेरिकन या अँग्रेज अफ़सरों की भारतियों या कनाडियनों की देशी जनता पर रहती है। फिर भी रूस के किसान आज भी राजनैतिक सत्ता से बहुत दूर हैं और उन्हें केन्द्रीय सावियत को शक्ति को सञ्चालित करने का कोई अधिकार नहीं। उनके राजनैतिक अधिकार स्वीकार नहीं किये जाते इसलिये हमारी चेतावनी है, "सर्वहारा की तानाशाही से सावधान!"

कैलिनिन ने किसानों की इस पराजय को टाल दिया और इसे महान् क्रान्ति समझा जो अपने परिणामों की दृष्टि से अक्तूबर की क्रान्ति के बराबर था और इसका श्रेय उन्होंने अपने नेता स्तालिन को दिया जैसे अक्तूबर क्रान्ति का श्रेय लेनिन को दिया जाता है। परन्तु उन्होंने इस बात को तनिक भी महसूस न किया कि इस प्रकार की विजय को संसार के किसान क्रान्तिकारी विजय न कहकर प्रति क्रान्तिवादी कहेंगे। क्योंकि आख़िर इसको और क्या कहा जाता जबकि उन किसानों के साथ ऐसा व्यवहार किया गया जिन्होंने सर्वहारा की भाँति ही वीरता

से युद्ध किया था और अनेक मोर्चों पर लड़ते हुये उनसे कहीं अधिक बलिदान किया था, जिन्होने अक्तूबर क्रान्ति को सफल और स्थायी बनाने तथा प्रतिक्रान्तिवादी सेनापतियों के विरुद्ध घोर संघर्ष किया था। आज वे ही पार्टी की सदस्यता के बाहर रखकर उपेक्षित किये जाते थे शासक सर्वहारा वर्ग से थोड़ी सी नौकरियाँ या सुविधाएँ लेकर अपना नैतिक पतन कर रहे थे और निर्वासन या नाश से बचने के लिये सामूहिककरण कराने वाले घुड़सवारों के आक्रमण के सामने झुककर या रेंग कर चलाये जा रहे थे। वेब दम्पति ने इस बात को स्वीकार किया है कि 'यह कठोर, भयंकर और खूनी संघर्ष था' और यह निराशा या निंदा का विषय नहीं यदि रूस के किसान इन अत्याचारों के सामने विजयी हुये हैं और सर्वहारा से समानता के संघर्ष में भी उन्होंने विजय प्राप्त की है। कम से कम उन्हें राय देने का बराबर अधिकार मिला है और अपने बाग रखने तथा उस पर ६ महीने से भी अधिक काम करने की आज्ञा मिली है।

रूस के किसानों का राजनैतिक दमन

किसानों के राजनैतिक दमन पर विचार करते समय हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि लेनिन के अनुसार बनाये हुए सन् १९२७ के विधान में भी किसानों के विरुद्ध बहुत पक्षपात किया गया है। क्यों कि हर एक मज़दूर को एक वोट देने का अधिकार था और पांच किसानों में केवल एक किसान वोट दे सकता था, इस प्रकार जन-संख्या की दृष्टि से किसान अपार बहुमत में थे उनके ऊपर अल्पसंख्यक मज़दूरों को बहुमत प्राप्त हो जाता था। यह मुस्लिम लीग की माँग को भी मात कर देता है। इसमें आश्चर्य नहीं कि लीग और कम्यूनिस्ट पार्टी आपस में गठबंधन कर रहे हैं।

चुनावों में केवल एक ही पार्टी की ओर से उम्मेदवार खड़ा हो सकता था और लोगों को स्वतंत्र रूप से ही खड़ा होना पड़ता था। इस

इसलिये आरम्भ से ही समाजवादी क्रांतिकारी जो किसानों के राजनैतिक नेता थे, विधान के क्षेत्र के बाहर पड़जाते थे और उन्हें संगठित राजनैतिक शक्ति के अधिकार नहीं मिल पाते थे।

सर्वहारा दल के उम्मीदवार को वोट देने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा न था। यदि उनमें से कोई साहस करता भी तो वह स्वतंत्र उम्मीदवार को वोट दे सकता था।

जब १६३७ में बोलशेविकों को यह निश्चय हो गया कि वे किसानों पर पूर्णतः विजयी होगये हैं, उन्होंने सर्वहारा और किसान वर्ग की वोट की शक्ति बराबर कर दी अर्थात् अब प्रत्येक व्यक्ति एक वोट दे सकता था। किन्तु अब भी उन्होंने कम्यूनिस्ट पार्टी के एकाधिकार का त्याग नहीं किया है। अर्थात् किसान चाहें तो कम्यूनिस्ट पार्टी के उम्मेदवार को वोट दें चाहे स्वतंत्र व्यक्ति को। हम जानते हैं कि स्वतंत्र व्यक्ति धारासभाओं में कितना बेकार होता है, क्योंकि चुनाव के बाद भी वह किसी दल के साथ मिलकर पार्टी नहीं बना सकता। इसके अतिरिक्त सोवियत शासन अभी इतना प्रजातांत्रिक नहीं हुआ है कि धारा सभाओं में विरोधी दल की सत्ता को सरकारी रूप से स्वीकार करे। इस प्रकार सोवियत की सर्वहारा की तानाशाही में किसानों की हालत हिन्दुस्तान के गवर्नरी शासन और साम्राज्यवाद की युद्धकालीन तानाशाही के समय के किसानों की सी नहीं थी। हिन्दुस्तान में किसानों के निजी संघ बनाने के अधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं था जबकि रूस में सन् १७ से यह अधिकार किसानों को मिला ही नहीं था।

ताक़त में आने के पहिले लेनिन किसानों विशेषकर ग़रीब किसानों के लिये अपनी कमेटियाँ बनाने का प्रचार करते थे, किन्तु जब बोलशेविकों के हाथ में ताक़त आई तो उन्होंने उन कमेटियों को तोड़ दिया।

केवल कम्यूनिस्ट पार्टी की स्वीकृति की हालत में लेनिन को भय हुआ कि किसान जनता की सच्ची भावनाएं और प्रतिक्रियायें न मालूम हो सकेंगी, इसलिये उन्होंने कहा:—

"हम हर प्रकार से इस बात का प्रयत्न करते हैं कि ऐसी संस्थाओं की सहायता विकास और वृद्धि की जाय और ऐसे निर्दल कार्यकर्त्ता और किसान सम्मेलन संगठित किये जाँय जिससे जनता की प्रवृत्तियों से हमारा निकटतम सम्पर्क हो, हम उनके प्रश्नों का उत्तर दें उनके सबसे अच्छे कार्यकर्त्ताओं को राज्य की संस्थाओं में अच्छे से अच्छे स्थान देकर आगे बढ़ाया जाय।

क्या यह सब गवर्नरी शासन के सरकारी सलाहकारों या वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्यों के भाषण की तरह ही नहीं मालूम होता। उन्होंने भी जनता से सम्पर्क रखने के लिये खेती और खाद्य समस्या तथा आयात और निर्यात की कमेटियां बनाई हैं। वे भी अच्छे से अच्छे हिन्दुस्तानियों को जिन्हें हम गद्दार कहते हैं, सरकार के स्थान दिलाये हुये हैं। रूस में सर्वहारा की तानाशाही और हिन्दुस्तान में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की तानाशाही विशाल जनता को अपना स्वामी मानने को तैयार नहीं।

इसलिये प्रजा के लिये सर्वहारा की तानाशाही उत्साह वर्धक सहायक और सन्तोषजनक नहीं हो सकती। क्योंकि रूस की भांति हीं यह एक वर्ग की निरंकुश सहानुभूतिहीन और असहनशील तानाशाही हो सकती है और दूसरे उतने ही परिश्रमी और प्रगतिशील किसान-वर्ग का शोषण कर सकती है। क्योंकि सोवियत रूस की सर्वहारा की तानाशाही ने किसानों और प्रजा के साथ बड़ा निर्दय व्यवहार किया और इसने अनेक स्वाभिमानी, राजनैतिक रूप से जाग्रत और ताक़तवर किसाननेताओं को ख़तम कर दिया और यह बहाना लेकर कि वे कुलक थे, किसानों को हर प्रकार के नेतत्व से वंचित कर दिया।

राल्फ फाक्स इस प्रश्न को यों रखने के लिये वाध्य हुये, "क्या मज़दूर वर्ग अपनी शक्ति को सदा के लिये स्थायी बनाने और पूंजीवाद को नष्ट करके किसानों के शोषण करने में लगायेगा?

परन्तु वह इसका कोई सफल उत्तर न दे सके क्योंकि सोवियत रूस के प्रयोगों में इसे इनकार करने की गुंजाइश नहीं है। वस्तुतः ऐसे प्रमाण कहीं ज्यादा हैं जो इस बात को सिद्ध करें कि सोवियत रूस में कारीगरों किसानों और प्रजा को कष्ट और अपमान के गहरे गड्ढे में फेंक दिया गया है। वे किसी न किसी बहाने सर्वहारा के लिये काम करने को बाध्य किये जाते हैं।

स्वतंत्र श्रमिक के रूप में उनकी सत्ता को सर्वहारा दल स्वीकार नहीं करता। असमान विनिमय, और मूल्य की कटौती आदि के कारण किसानों की रहन सहन सर्वहारा की रहन सहन की तरह अच्छी नहीं है।

अध्याय ६

नव जवान कम्यूनिस्ट भी किसान-विरोधी हैं—

यदि हम सन् १९३०–४० के नवजवान कम्यूनिस्टों की नीति का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे भी अपनी एक वर्गीय और एकपक्षीय नीति में संशोधन करने को तैयार नहीं, इसलिये हम उनसे कोई लाभदायक नीति-परिवर्तन की आशा नहीं कर सकते।

पहले राल्फ फाक्स को ही लीजिये, वे उपनिवेशों की जनता के सम्बन्ध में हम लोगों की स्थिति को स्वीकार करते हैं, परन्तु पूर्णतः हमारा समर्थन नहीं करते क्योंकि उनकी कम्यूनिस्ट कट्टरता बाधक हो जाती है।

वे लिखते हैं, "पूँजी के विरुद्ध दो क्रान्तिकारी शक्तियाँ संगठित होतीं हैं, महान साम्राज्यवादी राज्यों में मजदूर दल और उपनिवेशों में श्रमिक जनता, जो विदेशी पूँजी के दमन की शिकार होती है। (कम्यूनिज़्म पृ० २०) परन्तु किसानों के अतिरिक्त उपनिवेशों की श्रमिक जनता हो ही क्या सकती है? वे स्पष्ट ऐसा क्यों नहीं कहते,

क्योंकि इस प्रकार की स्वीकृति कम्यूनिस्ट पार्टी की एक वर्गीय सर्वहारा की कट्टरता के विरुद्ध हो सकती है।

राल्फ फाक्स ने कम्यूनिस्ट पार्टियों को प्रोत्साहित किया कि, "वे गरीब किसानों के विशाल जन-समूह को जो पूँजीवादी दमन से पिस गये हैं यह समझावें कि वर्तमान समाजपद्धति में उनके लिये कोई आशापूर्ण भविष्य नहीं। और कम्यूनिज़्म भूतकालीन मानवता के सभी गुणों और प्रगतिशील विचारों को उस मज़दूर वर्ग के साथ सम्मिलित करता है जो सभी पीड़ितों की स्वतंत्रता के लिये युद्ध छेड़े हुये हैं।"

परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि किसान इस संघर्ष में प्रमुख भाग लेंगे या मज़दूरों के बराबर ही। न तो उन्होंने यही स्वीकार किया कि उपनिवेशों के किसानों का यह कर्तव्य है कि वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय क्रान्तिकारी संघर्ष का अगला मोर्चा बनायें, क्योंकि साम्राज्यवाद भी संसार के पूँजीवाद का ही विकसित स्वरूप है। यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया है कि उपनिवेशों के जीवन के भीतर किसानों की युद्ध ज्वाला सुलग रही है। (पृ० ७६) उन्होंने उचित ही सोचा कि ऐसे युद्ध का मज़दूर आन्दोलन से संघ बन जाने पर मज़दूर आन्दोलन की विजय निश्चय हो जायगी। परन्तु वे इस बात को नहीं समझ सके कि संसार के पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उपनिवेशों के क्रान्तिकारी और किसान आन्दोलन किस प्रकार एक दूसरे से बँधे हुये हैं। फलतः दूसरे कम्यूनिस्टों की भांति राल्फ फाक्स भी यह न समझ सके कि पश्चिम की सामाजिकक्रान्ति को उपनिवेशों की स्वतंत्र और विकास शील राष्ट्रीय क्रान्ति की सहायता मिलनी चाहिये।

लेनिनवादी नीतिकार के रूप में उन्होंने कहा, "हिन्दुस्तान और चीन का प्रजातान्त्रिक पुनर्निर्माण तभी सम्भव है जब किसान और

मजदूरों को क्रान्तिकारी और प्रजातान्त्रिक तानाशाही क़ायम हो। (७६) ज़रा इस बात पर विचार कोजिए कि वे मजदूरों को किसानों के पहले रखने के लिए कितने सतर्क हैं। लेनिन ने भी तो निश्चय किया था सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना का, पर किसानों का नाम भी ले लिया करते थे। क्या इसका कोई दूसरा मतलब हो सकता है ?

और मानों उपनिवेशों की किसान जनता को ऐसी विशेष आशा के विरुद्ध चेतावनी देने के लिये कि वे स्वतन्त्र और स्वावलम्बी भाग ले सकें, फ़ाक्स ने सतर्कतापूर्वक यह कहा,—

"समाज में अपने स्थान के कारण मजदूर वर्ग ही प्रतिक्रान्ति की शक्तियों —जमींदारों और पूँजीपतियों के विरुद्ध किसानों को उत्साहित और सङ्गठित कर उनका नेतृत्व कर सकता है। चीन में कुओ मिनतांग और हिन्दुस्तान में कांग्रेस के आन्दोलनो में भाग लेकर ये लोग कहीं क्रान्तिकारी अनुभव और ताक़त न प्राप्त कर लें, इसलिये फ़ाक्स ने इनको चेतावनी देते हुये कहा, "कि ये दल जमींदारों और कारखानेदारों वकीलों और सेनावादियों की छाया ये हैं और उन प्रजातान्त्रिक दलों की रूपरेखा के समान हैं जो सन् १८१३—४८ के सामन्तवाद के विरुद्ध योरोप में खड़े हुये थे। इनका मतलब क्या है ? यह सभी कम्यूनिस्टों की प्रसिद्ध चाल है, "पहले सहानुभूति करना, फिर बहलाना और अन्त में समाप्त कर देना और काल्पनिक सर्वहारा के स्वार्थों की वेदी पर उन्हें बलि कर देना है। इसका उद्देश्य यह भी है कि वे समझ न पावें कि उनका कर्तव्य राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में स्वराज्य के लिये लड़ना और स्वतन्त्र राज्यों में एक सबल अस्तित्व रखना है।

किसानों के विरुद्ध फ़ाक्स की चालें

उपनिवेशों की विशाल किसान जनता का नेतृत्व करने वाला इतना क्रान्तिकारी वर्ग चेतनापूर्ण, क्रान्तिमना और संगठित सर्वहारा

वर्ग कहाँ है ? चीन और हिन्दुस्तान में धीरे धीरे सर्वहारा वर्ग की जड़ जम रही है, और उपनिवेशों की राष्ट्रीय क्रान्ति में भी इसे अभी कोई स्थान नहीं मिल सका है। फिर भी अन्य कट्टरवादी कम्यूनिस्टों की भाँति फाक्स भी चाहते हैं कि क्रान्ति के लिये युद्ध आरम्भ करने के पहले वे इस अत्यन्त छोटे सर्वहारा वर्ग के महान् क्रान्तिकारी शक्ति बनने की प्रतीक्षा करते रहें। अन्यथा सर्वहारा वर्ग अपनी तानाशाही न प्राप्त कर सकेगा और किसानवर्ग स्वतन्त्र हिन्दुस्तान और चीन में महत्वपूर्ण स्थान पा लेगा, जिसका वह अधिकारी है।

कम्यूनिस्टों को ये सब किसान–विरोधी चालें मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। लेनिन ने तो पहले ही उपदेश दिया था कि गाँव के उत्पादकों को शहर वालों का बौद्धिक नेतृत्व स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि शहर वाले उनके (गांव वालों के) हितो के स्वाभाविक प्रतिनिधि हैं।

(लेनिन—राज्य और क्रान्ति)।

एक बार सामन्तवादियों और पूँजीपतियों ने दावा किया था कि वे किसानों के हितों के सच्चे समर्थक हैं अब वही दावा सर्वहारा भी करते हैं। कट्टर कम्यूनिस्टों की यह महत्वाकांक्षा कितनी मूर्खतापूर्ण है। क्या संसार के किसान दूसरे वर्ग द्वारा दबे रहना और उन्हें अपना स्वाभाविक प्रतिनिधि कहना स्वीकार करते रहेंगे। निस्सन्देह वे इस तरह की परम्परा कदापि न चलने देंगे। हिन्दुस्तान चीन, मिक्सको और आयर्लैण्ड के किसानों ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपने राष्ट्रीय संघर्षों और क्रान्तिकारी सफलता द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वे अब किसी भी वर्ग को अपना स्वाभाविक प्रतिनिधि मानने के लिये तैयार नहीं हैं। उन्होंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि वे स्वयं अपने प्रतिनिधि, स्वामी और क्रान्ति–मार्ग के प्रदर्शक होंगे।

राल्फ फाक्स और कम्यूनिस्ट इण्टर नेशनल के उपनिवेश सम्बन्धी विचार एक से हैं और साम्राज्यवादी देशों द्वारा उपनिवेशों के शोषण के विषय में हिन्दुस्तान के गान्धीवादी राष्ट्रीय नेताओं के विचार से मिलते हैं। वे हमारे उत्पादन के नियमों से सहमत हैं और विशेष सर्विसों हितों तथा संसार के धन के असमान और अनुचित बटवारे पर भी उनका एक मत है। वे यह भी महसूस करते हैं कि उपनिवेशों की जनता द्वारा पैदा की हुई अतिरिक्त पूँजी उनके साम्राज्यवादी और पूँजी वादी स्वामियों द्वारा छीनी जाती हैं। फाक्स ने इस बात को स्वीकार किया है कि साम्राज्यवाद उपनिवेशों के किसानों की अतिरिक्त उपज जब्त कर लेता है। वह कहते हैं कि उपनिवेशों की—जनता के आर्थिक जीवन पर शासक जातियों का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। अपने देश में ये लोग चीजों का मूल्य बहुत कम रखते हैं और उपनिवेशों में बहुत अधिक। इससे अपने देश में व्यापार पर एकाधिकार हो जाने से वे लोग उपनिवेशों के व्यापार से खूब लाभ उठाते हैं। हिन्दुस्तानी किसानों के बारे में भी फाक्स साहब लिखते हैं कि वह अपनी फसल को बाजार में आजादी से बेच नहीं पाता। और बैंक या मिल मालिक के दलाल द्वारा उसकी सारी फसल कूत ली जाती है। दक्षिण अफ्रीका आदि उपनिवेशों में तो साफ तौर पर सारे देश का जीवन कुछ थोड़े से बड़े लोगों और ट्रस्टों और बगीचे वालों की कृपा पर निर्भर होता है। और वहाँ दास-प्रथा वास्तविक रूप में प्रचलित हैं। (देखिये कैम्पबेल लिखित' अफ्रीका में साम्राज्य') इन सब बातों से केवल यही गांधीवादी विचार सिद्ध होता है कि उपनिवेशों की जनता और रङ्गीन जातियों के किसानों को संसार के पूँजीवाद से दोनों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लड़ना पड़ता है। यदि उन्हें पूर्णतः प्रजातान्त्रिक सरकार प्राप्त करना और साम्राज्यवादी राज्य

की स्थापना करना और पूँजीवादियों के चंगुल से मुक्त होना है तो उन्हें पूँजीवाद के विकसित स्वरूप साम्राज्यवाद से लड़ना ही होगा।

परन्तु ये कम्यूनिस्ट इतने कट्टरपंथी हैं कि वे यह स्वीकार ही नहीं करते कि उपनिवेशों की जनता का एक स्वतंत्रक्रान्तिमार्गी पथ है। हालांकि यह बात स्पष्ट है कि किसान परिस्थितियों से बाध्य होकर अपना क्रान्तिकारी संघर्ष लड़ रहे हैं।

इसके विपरीति दूसरे कम्यूनिस्टों की भाँति फाक्स भी अल्प संख्यक उपनिवेशीय सर्वहारा में विश्वास करते हैं जो युद्धकालीन उद्योगों के साथ अभी अभी विकसित हो रहे है। फाक्स यह भी कहते हैं कि उपनिवेशों के मज़दूरों को अपनी परिस्थितियों के कारण लड़ना या मरना पड़ेगा। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि उपनिवेशों के किसान को लड़ने या मर मिटने की अधिक आवश्यकता है। वह चीन और हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारी किसानों के राष्ट्रीय संघर्ष का महत्व नहीं समझ पाते। वह केवल कट्टरपंथ वश हम लोगों के वश की उपपत्ति (विचार धारा) स्वीकार नहीं कर पाते कि संसार के पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के दबाव से किसान, कारीगर और दूसरे पेशे वाले लोग सर्वहारा से भिन्न श्रमिकों के स्वतंत्र दल के रूप में निर्मित हो रहे हैं और इन वर्गों में वर्ग चेतना आने के लिये गत १६२६–३० की आर्थिक मन्दी या वर्तमान महायुद्ध जैसी परिस्थितियों की आवश्यकता रही है। फाक्स ने यह भी लिखा है कि साम्राज्यवाद ने असंख्यों लाख किसानों; मज़दूरों कारीगरों और क्रान्तिकारी बुद्धि-जीवियों को जागृत कर दिया है। इसने पूर्वीय रहस्यवाद और अकर्मण्यता के चंगुल से छुड़ाकर उन्हें जीवन के सक्रिय संघर्ष में लगा दिया है और आधुनिक संसार में उन्हें सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति बना दिया है।

इस प्रकार उन्होंने मानो हमारे इस दृष्टि कोण को स्वीकार कर लिया है कि किसानों और प्रजा के जीवन, उत्पादन सम्बन्ध और वाणिज्य कार्यों में आधुनिक पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के कारण बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। किन्तु अन्य मार्क्सवादियों की तरह मार्क्स, बुखारिन, बर्न्स आदि अपने कट्टर सिद्धान्त में कोई परिवर्तन करने के लिये तैयार नहीं हैं इसलिये उनके सिद्धान्त बदलते हुये संसार के अनुकूल नहीं हैं और वे आज भी किसान-विरोधी हैं, क्योंकि उनकी नीति विज्ञान से संचालित न होकर कट्टरवाद से संचालित होती है।

स्तालिन ने स्वयं लेनिन के विषय में कहा है, कि, "हमारी क्रान्ति के सारे अनुभवों का सिद्धान्त अर्थात् क्रान्ति की विजय सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष पर जो किसानों को ज़मींदारों और पूँजीपतियों के विरुद्ध लड़ाता है, निर्भर है—लेनिन के लिये यह सिद्धान्त बहुत पवित्र और आदरणीय था। इस युद्ध के बाद भी कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल के स्थगित रहने के बावजूद भी यही सिद्धान्त है जो कम्यूनिस्टों को मास्को के आदेशों के प्रति इतना वफ़ादार रखता है। और जब तक कम्यूनिस्ट, मास्को के मार्क्स एञ्जिल्स लेनिन इंस्टीट्यूट के इशारों पर चलते रहेंगे। और उनकी किसान-विरोधी चालों में पड़ते रहेंगे, तब तक उपनिवेशों के किसान उनका विश्वास नहीं कर सकेंगे।

हमें आश्चर्य होता है कि क्या हम कम्यूनिस्ट पार्टी के 'सर्वहारा के अधिनायकत्व के सिद्धान्त को स्वीकार कर सकेंगे और विशेषकर इस हालत में जब उपनिवेशों की समाजप्रणाली में सर्वहारा की संख्या बहुत कम है। जो लोग कम्यूनिस्टों की नीति से परिचित नहीं उनके मन में इस प्रकार का सन्देह सचमुच उठ सकता है।

अध्याय ७

कम्यूनिस्टों के पक्षपातपूर्ण विचार

कम्यूनिस्टों का दृष्टिकोण क्या है? कम्यूनिस्टों के लिये सारा संसार केवल एक देश के समान है जिसमें सोवियत रूस सर्वहारा वर्ग है और उपनिवेशों का भाग किसान वर्ग। उनके लिये इतना ही काफ़ी है कि सोवियत रूस में संगठित और शासन करने वाला सर्वहारा वर्ग है और उपनिवेशों की जनता सर्वहारा वर्ग का किसान-भाग है। कम्यूनिस्टों के भ्रम के अनुसार इस प्रकार के किसान-भागों पर रूस के सर्वहारा वर्ग के नाम पर शासन किया जा सकता है। हाँ स्थानीय क्षेत्र में उनका नाम कम्यूनिस्ट कहा जायगा क्या बोलशेविक पार्टी के ताक़त में आ जाने के बाद से उसने अपनी तानाशाही रक्खी हालांकि इससे बहुसंख्यक किसानों के हाथ में कोई ताक़त न रही। चाहे स्थानीय सर्वहारा वर्ग बिलकुल अल्पमत में हो तो भी उपनिवेशों में भी किसानों के हाथ में शक्ति न देनी चाहिये।

नाम के लिये तो कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल खतम कर दिया गया है, किन्तु वस्तुतः यह आज भी वर्तमान है? सोवियत शासन और नेतृत्व

आग व्यक्त हुये उसके सिद्धान्त आज भी प्रचलित हैं। इसलिये उपनिवेशों का कम्यूनिस्ट यह कहता है कि वह स्थानीय सर्वहारा वर्ग के हितों का समर्थन करता है जिसे वह स्थानीय किसान जनता से बिलकुल अभिन्न मानता है। परन्तु उसका यह वक्तव्य कोरा भ्रम और झूंठ है। वह स्थानीय किसान जनता को बहका कर उन्हें किसान पंचायतों में बांधना चाहता है, परन्तु सर्वदा वह संसार के सर्वहारा वर्ग का सोवियत रूस के सर्वहारा शासन के नेतृत्व में ही उनका कल्याण देखता है। ऐसे अवसर पर भी वह सचमुच विश्वास कर सकता है कि वह उस विशेष उपनिवेशीय जनता को संसार की सर्वहारा क्रान्ति के लिये बचाना चाहता है। यह हम लोगों को चाहे कितनी भी विचित्र लगे किन्तु कट्टर मार्क्सवादी के लिये तो यह ठीक योजना है। और कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल के सदस्यों को प्रोत्साहित करने के लिये दिये गये लेनिन के भाषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है:—

"यदि क्रान्तिकारी और विजयी सर्वहारा उपनिवेशों के किसानों में जोरदार प्रचार करता है और सोवियत सरकार सभी प्राप्त साधनों के साथ उनकी सहायता करती है तो पिछड़े हुये राष्ट्रों में पूंजीवादी विकास अनिवार्य नहीं होगा।" यही बात गांधीवादी भी कहते हैं पर भारतीय कम्यूनिस्ट उनसे बिलकुल सहमत नहीं। क्यों? लेनिन ने आगे कहा है, "सभी उपनिवेशों और पिछड़े हुये देशों में हमें न केवल स्वतंत्र सैनिकों का दल ही कायम करना चाहिये, न केवल इमें पार्टी संगठन और किसान पंचायतों के लिये प्रचार करना चाहिये परन्तु कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल को चाहिये कि वह इस विचार को तात्विक पुष्टि दे कि आगे बढ़े हुये मज़दूर वर्ग की सहायता द्वारा, पिछड़े हुये देशों में सोवियत प्रथा की स्थापना हो सकती है और धीरे धीरे विकास करते हुये पूंजीवादी विकास को हटाया जा सकता है।

इससे हम यह देख सकते हैं कि एक कम्यूनिस्ट को रूस से किस प्रकार सैनिक आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता पाने की आशा दिलाई जाती है कि वह किसान पंचायतों द्वारा संसार के मज़दूर वर्ग के नाम पर भारतवर्ष जैसे देश में शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करे। वह अपनी पार्टी के लिये शक्ति प्राप्त करना चाहता परन्तु संसार के सर्वहारा के नाम पर और उपनिवेशों की किसान जनता के बल पर। कैसी विडम्बना है? और इसका उद्देश्य क्या है? सोवियत रूस की तरह किसानों को हटाकर या खतम करके उनसे छुट्टी पा लेना और इसी को अक्तूबर क्रान्ति जैसी महान् क्रान्ति बताना। क्या कैलिनिन ने ऐसी विजय की डींग नहीं हाँकी थी?

एक बार यदि कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा सर्वहारा के अधिनायकत्व को प्राप्त करने की कल्पना भी करली जाय तो सोवियत रूस की तरह वह किसानों को सर्वहारा बनाने या किसी न किसी प्रकार खतम करने का प्रयत्न करेगी।

इस भय से कि कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम किसानों की राजनैतिक जागृति, आर्थिक शक्ति और संगठन को बढ़ा देगा, हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्ट उसकी हँसी उड़ाता है, उस पर आक्रमण करता है। लेनिन ने भी इसी प्रकार समाजवादी क्रान्तिकारियों के कार्यक्रम पर आक्रमण किया था। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान का कम्यूनिस्ट डरता है कि संगठित किसान वर्ग जो अपनी वर्गचेतना, क्रान्तिकारी योग्यता और राजनैतिक सत्ता स्वयं विकसित करता है वह शायद नाम मात्र के उपनिवेशीय सर्वहारा वर्ग के लिये कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा शक्ति न प्राप्त कर सके इसलिये वह हर एक किसान या कारीगर-संगठन में घुसना चाहता है, उनके दल में भ्रम पैदा करता है, फूट डालता है और एकतापूर्ण विचार और कार्य रोकने के लिये प्रतिस्पर्द्धी संस्थायें क़ायम करता है। यद्यपि लेनिन ने किसान पंचायतों के लिये यह ज़रूरी समझा

था वे अपना आर्थिक पुनर्निमाण पूंजीवादी विकास के पहले की अपनी हालतों से शुरू करदें, फिर भी उपनिवेशों का कम्यूनिस्ट गांधी जी की गृह उद्योगों की योजना की हंसी उड़ाता है क्योंकि इससे वह कारीगर वर्ग मजबूत होगा जिसे कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो के अनुसार खतम हो जाना चाहिये। और यदि ये वर्ग राष्ट्रीय क्रान्ति को गांधी जी की समाजवादी राष्ट्रीयता के आधार पर संगठित करना चाहते हैं तो कम्यूनिस्टों का यह कर्तव्य है कि यदि शक्ति पाने के लिये इसका विरोध करें।

यह तो दूसरी बात है कि शक्ति पाने के बाद वह स्वयं पूंजीवादी विकास के पूर्व की अर्थप्रणाली का आरंभ और कार्यान्वित करना चाहता है। क्या किसानों की आर्थिक माँग के विषय में लेनिन से स्वयं समाजवादी क्रान्तिकारियों की नीति के साथ ऐसा ही नहीं किया था ?

साथ ही साथ हिन्दुस्तान का कम्यूनिस्ट अपना यह कर्तव्य समझता है कि वह किसानों और कारीगरों के विकास और उनके सँगठन तथा क्रान्ति के मार्ग में बाधा डालें जिससे सर्वहारा वर्ग धीरे धीरे संख्या और प्रभाव तथा संगठन और क्रान्तिकारी योग्यता में बढ़ जाय।

यह बात निश्चित है कि किसान स्वेच्छा से इस स्थिति को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते। और न तो उसमें किसी प्रकार की उज्वल आशा ही देख सकते। और जो किसान और कारीगर कम्यूनिस्टों के धोखे

लेनिनवाद में स्तालिन ने स्वयं लिखा है (पृ० २६–३७) कि कम्यूनिस्ट पार्टी की शक्ति इस बात में है कि यह सर्वहारा वर्ग के सभी संगठनों से अच्छे से अच्छे कार्यकर्ताओं को आकृष्ट कर लें। इसका काम सर्वहारा की सारी शक्तियों को एकात्रित करना है और उनकी स्वतंत्रता के लिये ही इनका प्रयोग करना है। जहां तक गरीब और उपेक्षित किसानों का सम्बन्ध है वे सर्वहारा मोर्चे और किसान जनता के बीच सम्बन्ध स्थापित रक्खें जिससे किसान समाजवादी निर्माण में प्रसन्नता पूर्वक भाग लेना पड़ता।

में पड़ते हैं वे न केवल अपने ही वर्गों को कमजोर करते और संसार के पूंजीवाद से स्वतंत्र होने के लिये अपने न्यायोचित क्रान्तिकारी प्रयत्नों को नष्ट करते हैं वरन् अपने वर्ग की सच्ची स्वतंत्रता खोकर केवल स्वामी-परिवर्तन में सहायता देते हैं।

इससे किसी को इस परिणाम पर नहीं पहुँचना चाहिये कि हम लोग सर्वहारा की उन्नति और विकास के विरुद्ध हैं। वस्तुतः हम चाहते हैं कि सर्वहारा वर्ग पूर्णतः विकसित हो और अपने लिये भावी प्रजातांत्रिक सभा में ऊँचा से ऊँचा स्थान प्राप्त करे, परन्तु साथ ही साथ किसानों को भी बराबर सुविधाएं मिले।

हम अपने विश्वास को फिर से दुहराते हैं कि हम किसी एक भाग या वर्ग की तानाशाही नहीं चाहते और हम इस बात के लिये उत्सुक हैं कि भावी समाज में तीनों महान् श्रमिक वर्गों, किसानों, मजदूरों और शेष प्रजा को समान स्थान मिलें।

हमारा रास्ता वस्तुतः प्रगतिशील है।

लेनिन ने मार्क्सवादी शब्द का प्रयोग उन्हीं लोगों के लिये सीमित कर दिया है जो उन विशेष संकेतों, परिणामों और निर्णयों को स्वीकार करते हैं जिन्हें मार्क्स ने अपनी परिस्थितियों में अपने सीमित ज्ञान साधनों और अध्ययन द्वारा निर्धारित किया था।

'द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद' में निहित विचारों को एमिल बर्न्स ने बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। आपने लिखा है,

"द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार यथार्थ हमारे जाने बिना भी वर्तमान रहता है। और यह यथार्थ छिन्न भिन्न खण्डों में न होकर परस्पर एक दूसरे पर आश्रित है, यह गतिहीन नहीं प्रगतिशील है और क्रमशः बढ़ता और नष्ट होता रहता है। यह विकास एक विशेष अंश तक क्रमिक होता हैं और उसके बाद उसमें तीव्र विरोध होता है और कोई नई चीज उत्पन्न हो जाती है' यह

विकास अन्तर्विरोधों के कारण ही होता है और तेज परिवर्तन मिटते हुये तत्वों के ऊपर नवीन तत्वों की विजय है।"

हम इस दृष्टिकोण से किसानों प्रजा और सर्वहारा की आधुनिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं। किन्तु कम्यूनिस्ट इन मार्क्सवादी विचारों की ओर ध्यान देने से इनकार कर देते हैं कि यथार्थ का वास्तविक अनुभव सत्यता का प्रमाण है और कि द्वान्द्वात्मक भौतिक सभी सिद्धान्तों और अन्वेषणों की जांच करता है और अनुभव से सभी प्रयोगों को देखता है तथा उन क्रियाओं और सिद्धान्तों में जो वास्तविकता से मेल नहीं खाते संशोधन करता है।

अध्याय ८

मार्क्स और बहुसंख्यक जनता

हम इस बात का दावा करते हैं कि सर्वहारा के अधिनायकत्व की संभावना के सम्बन्ध में मार्क्स का निर्णय बाद के इतिहास द्वारा सिद्ध नहीं हो सका है। और यह ठीक ही है। १९१७ में भी लेनिन को किसान-मजदूरों की तानाशाही की घोषणा करनी पड़ी क्योंकि वह सीधे सीधे किसानों के अधिकार की उपेक्षा नहीं कर सकते थे, जिन्होंने उन्हें शक्ति दिलाने में सहायता की थी और जो स्वयं भी समाजवादी क्रान्तिकारियों के राजनैतिक नेतृत्व और अपनी किसान कमेटियों से ताक़तवर हो गये थे। कुछ महीनों की किसान मज़दूर तानाशाही के बाद ही वहCoup d' Elatप्राप्त कर सके और सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना कर सके। अर्थात् समाजवादी क्रान्तिकारियों के राजनैतिक नेतृत्व को खत्म करने के बाद ही वे अपने उद्देश्य में सफल हुये। इस प्रकार एक वर्गीय सर्वहारा क्रान्ति द्वारा नहीं बल्कि किसानों के प्रति छल और विश्वासघात से वे सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर सके।

मार्क्स की यह आशा कि सर्वहारा आन्दोलन बहुसंख्यक जनता का स्वतंत्र और जाग्रत आन्दोलन हो जायगा और सारी जनता का हितसाधन करेगा, अभी पूर्ण नहीं हुई है। इसलिये वर्तमान परिस्थितियों में सर्वहारा की तानाशाही बहुत अल्प संख्यक जनता की तानाशाही है। विशेषकर उपनिवेशीय देशों में यह बात और भी लागू होती है। आजकल की बदली हुई परिस्थियों के अनुकूल मार्क्स के विचारों को विस्तृत और विकसित करना क्या वैज्ञानिक और द्वन्द्वात्मक प्रयत्न न होगा? क्या यह जरूरी नहीं है कि इस मार्क्सवादी विचार का संशोधन करके इसे एक दम आधुनिक बना दिया जाय। विशेषकर इसलिये भी कि आज हमें उपनिवेशों की जनता के राजनैतिक विकास का और उनकी आर्थिक तथा राजनैतिक आवश्यकताओं का अधिक पता है।

यह निस्सन्देह एक मार्क्सवादी प्रयत्न होगा, यदि हम वर्तमान घटनाओं के अनुसार सिद्धान्तों को मोड़ें। अर्थात् इस बात को महसूस करें कि आज किसान और प्रजा दोनों प्रगतिशक्ति और उत्पादक शक्तियाँ हैं और वे आधुनिक समाज के उतने ही क्रान्तिकारी और प्रगतिशील अङ्ग हैं जितने सर्वहारा। इसलिये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपनिवेशों में एक वार स्वतंत्रता मिल जाने पर किसान मजदूर प्रजा-राज की स्थापना बहुत अधिक संभव है। क्योंकि इनमें से किसी एक वर्ग का अधिनायकत्व और विशेषकर सर्वहारा का अधिनायकत्व बहुसंख्यक जनता का शासन नहीं होगा। हमारा ही किसान मजदूर प्रजा-राज का नारा जीव की वास्तविकता से सम्बंध रखता है।

मार्क्स ने स्वयं अनुभव किया था कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवाद को अकेला नहीं हरा सकता और इसलिये १८७१ के पेरिस कम्यून में फ्राँस के किसानों और पेरिस की समस्त जनता का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर सफल न हो सके।

मित्रों के जीतने की लेनिन की नीति

यद्यपि लेनिन मार्क्सवादी कट्टरता के पिता समझे जाते हैं। किन्तु वे मार्क्स के ही विचारों तक रुके न रहे। वे मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और सामाजिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त निर्णयों और सक्रिय परिणामों का संशोधन और विस्तार करने में विश्वास करते थे। इसलिये उन्होंने और विचारों के साथ 'मजदूर वर्ग के सहायकों' का सिद्धांत विकसित किया। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि सर्वहारा किसान और प्रजा वर्ग में से मित्र बना ले किन्तु अगला मोर्चा और मुख्य प्रभुत्व उसी का रहे। परन्तु उन्होंने किसानों में भेद पैदा करके सब से गरीब किसानों को अपने साथ लिया मध्यवित्त वाले किसानों को तटस्थ कर दिया और धनिकों को नष्ट कर दिया और रूस के पूँजीवादी प्रजातांत्रिक क्रान्ति के विभिन्न अवसरों पर किसानों के इन तीन दलों में से भिन्न भिन्न दल को अवसर के अनुकूल अपने साथ लिया।

किसानों में फूट डालने वालों से लड़ो

हमने इस बात का निश्चय कर लिया है कि किसानों में फूट डालने वाली नीति का खुलकर सामना किया जाय। लेनिन के अनुसार हम सिद्धांत पक्ष से अधिक महत्त्व कार्यपक्ष को देना चाहते हैं और आज यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि किसान कारीगर और प्रजा-सभी सच्चे क्रान्तिकारी हैं। वे अपने अधिकारों के लिये और राजनैतिक शक्ति के लिये लड़ रहे हैं, इसलिये केवल सर्वहारा के अधिनायकत्व का वे विरोध करते हैं। इसलिये हमारा नारा है। ''किसान मजदूर प्रजा राज स्थापित करो।''

''मार्क्सवाद वस्तुस्थिति की पूरी खोज-बीन करके और मित्रों आदि के विषय में वर्ग की शक्तियों का सम्बन्ध समझ कर चलता है। इस प्रश्न पर एमिल बर्न्स दोनों एक मत हैं। और इस सिद्धांत पर काम करके लेनिन ने किसानों के कुछ भाग को सर्वहारा का मित्र बना लिया और

स्तालिन को भी किसानों को बांटने और खण्ड खण्ड करने की नीति में सफलता हुई। इस प्रकार वे तथोक्त ग़रीब किसानों की सहायता से किसानों के बहुत बड़े समुदाय पर सामूहिक कृषि लादने और सर्वहारा द्वारा उन पर अधिकार रखने में सफल हुये।

गांधी-वादी ढंग

हमारा यह विचार है कि संसार के किसान और प्रजा आज वैसे ही नहीं हैं जैसे १६१७-३७ में थे। रूस के सर्वहारा के अधिनायकत्व द्वारा रूस की किसान कारीगर और प्रजा पर किये गये अत्याचारों और संसार के किसानों पर पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा होने वाले दमन के कारण आज वे पूर्णतः जागृत हैं। इसलिये अब इस बात के लिये उन्होंने निश्चय कर लिया है कि किसी भी प्रकार की तानाशाही द्वारा शोषित नहीं हूंगा या किसी स्वेच्छा से निर्मित क्रान्तिकारी मोर्चे पर छोटे साझीदार की तरह न रहेंगे। वे जानते हैं कि यदि मार्क्स-वाद ने संसार का कोई लाभ किया है तो वह यह कि उससे लोग उन अन्धविश्वासों से मुक्त हो गये हैं जिन्हें लोग चिरंतन समझते आ रहे थे।

परन्तु ये अन्धविश्वास अधिक तर विशेष विशेष समय या स्थान के लोगों के वर्ग-हित के प्रतिबिम्ब हैं। और वे यह महसूस करते हैं कि मार्क्स के ज़माने से लेकर लेनिन, स्टालिन, बुखारिन, फ़ाक्स, बर्न्स जान स्ट्रेचे और पश्चिमी कम्यूनिस्ट तक अपने वर्ग के क्रान्तिकारी भाग के समर्थक हैं इसलिये वे सरलता से मार्क्स की सर्वहारा की तानाशाही की नीति को बहुत सुविधापूर्ण मानते हैं। रूस में लेनिन और स्टालिन के महत्वपूर्ण प्रयोगों के कारण यह अन्धविश्वासपूर्ण नारा (सर्वहारा की तानाशाही) पश्चिमी कम्यूनिस्टों के लिये पवित्र बन गया है।

वे हर वस्तु का परीक्षण इस दृष्टिकोण से करते हैं, कि क्या अमुक कार्य इन परिस्थितियों में मज़दूर वर्ग को हानि पहुँचायेगा या लाभ!

परन्तु संसार के किसान यह जानते हैं कि उपनिवेशों में सर्वहारा नहीं किसान सबसे अधिक क्रान्तिकारी हैं और इस बात को राल्फ फाक्स ने भी स्वीकार किया है। ये किसान कट्टरपंथी कम्यूनिस्ट विचारों से सहमत नहीं और आशा करते हैं कि वे कभी भी अविकसित और अल्पसंख्यक सर्वहारा का चाहे वह कितना ही अधिक क्रान्तिकारी क्यों न हो अन्धानुकरण नहीं करेंगे। उन्होंने प्रत्येक रूढ़ि की प्रत्येक, निर्णय और नीति का जो कम्यूनिस्टों ने निर्धारित की है, फिर से समीक्षा करने का निश्चय कर लिया है। अपनी वर्तमान आवश्यकताओं और परिस्थितियों तथा राष्ट्रीय और वर्ग-चेतना के दृष्टिकोण से अपनी नीति का निर्माण करना चाहते हैं

मार्क्सवाद, लेनिनवाद और स्तालिनवाद के साथ साथ जो रूढ़िवाद चल पड़ा है उसका कारण यह है कि हम सोचते हैं कि मार्क्स और लेनिन चाहते थे कि हम उन्हीं की नीति का अक्षरशः अनुकरण करें। उदाहरणार्थ लेनिन ने मार्क्स के विषय में लिखा है। "उन्होंने १८४५–५१ के महान् क्रान्तिकारी वर्षों के अनुभव को अपने निर्णयों का आधार बनाया। और 'मार्क्स की शिक्षा क्रियात्मक अनुभव का सारांश है" और अपने ऐतिहासिक अनुभवों पर दृढ़ रहने की मार्क्स की नीति की लेनिन ने भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हमें यह देखने का सौभाग्य मिला है कि रूस में किसानों और प्रजा के हितों के विरुद्ध सर्वहारा की तानाशाही ने कैसे कारनामे दिखलाये हैं। यहां विचार का विषय यह नहीं है कि इन दो वर्गों ने भी प्रचलित तानाशाही को स्वीकार किया है या नहीं? बल्कि यहाँ तो यह प्रश्न है कि इस तानाशाही ने किस प्रकार कितनी हानि या क्षति के बाद जनता पर कितना बुरा प्रभाव डालकर सर्वहारी की क्रान्ति का कार्यक्रम सफल हो गया है। यह बात सच है कि स्तालिन ने ऐन्जिल्स की

इस शिक्षा का पालन किया है कि "हमारा काम यह है कि पहले हमें किसानों की व्यक्तिगत उपज और व्यक्तिगत स्वामित्व को सहकारी उत्पत्ति के रूप में बदल देना होगा। परन्तु इस कार्य में भी बलप्रयोग नहीं करना चाहिये। केवल उदाहरण दिखलाकर और समाजिक सहायता देकर उन्हें सहकारी आन्दोलन की ओर लाना चाहिये। किन्तु यह भी ठीक है कि स्तालिन और उनके दल वाले इस नीति से इतनी बुरी तरह हट गये थे कि इससे संसार की क्रान्ति में बहुत बाधा पड़ी।

इसी दृष्टि कोण से समाजवादियों को कम्यूनिस्ट पार्टी के नारे सर्वहारी की तानाशाही के स्थान पर किसान मजदूर प्रजा-राज के··· रामराज्य के गाँधी जी के नारे पर विचार करना चाहिये।

हिन्दुस्तान के किसानों के सामने दो पक्ष हैं एक हमारी राष्ट्रीय काँग्रेस है। जो किसान मजदूर प्रजा राज का समर्थन करती है और दूसरी है कम्यूनिस्ट पार्टी जो सर्वहारा के अधिनायकत्व की समर्थक है। एक किसान कांग्रेस है जो किसानों को स्वतंत्र प्रगतिशील, क्रान्तिकारी और समाजवादी वर्ग समझती है और दूसरी है किसान सभा जो कम्यूनिस्टों के इस सिद्धान्त का समर्थन करती है कि किसानों को सर्वहारा बना देना चाहिये क्योंकि वे निश्चय रूप से प्रतिक्रियागामी सिद्ध होंगे और इस लिये उनसे होशियार रहना चाहिये। अब किसानों को इन दोनों पक्षों में से एक को चुन लेना है। यदि किसान किसान कांग्रेस के मार्ग पर चलकर राष्ट्रीय कांग्रेस का राजनैतिक नेतृत्व स्वीकार करते हैं तो निश्चित रूर से वे स्वराज्य और किसान मज़दूर प्रजा राज्य प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु यदि वे किसान सभा के पथ पर चलकर कम्यूनिस्टों का नेतृत्व स्वीकार करेंगे तो वे सर्वहारा की क्रान्ति का रास्ता साफ़ करेंगे और परिणाम-स्वरूप उनका दमन और अन्त हो जायगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दुस्तान के किसान केवल राष्ट्रीय कांग्रेस और किसान कांग्रेस का अनुसरण करेंगे।

अध्याय ९

किसान और उनका भविष्य

क्या किसान संगठन एक अलग राजनैतिक दल हो सकता है?— उन एक मात्र किसान सभावादी ने जिनको कम्यूनिस्ट १६४४–४५ तक अपने साथ रख सके सन् १६४४ में कहा था, यह हमारा कर्तव्य है कि हम स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा करदें और इसी आधार पर अपने क़दम उठावें कि किसान संगठन का एक अलग और स्वतंत्र अस्तित्व हो।

यह सच है कि सन् १६४० तक हम लोगों में से बहुत से लोग, जो कांग्रेस के अतिरिक्त किसी विशेष दल से सम्बन्ध नहीं रखते थे, यह सोचते थे कि किसान सभा या ट्रेड यूनियन कांग्रेस एक स्वतंत्र राजनैतिक सत्ता बन सकती हैं। यद्यपि किसान सभा में कांग्रेसवादियों से लेकर कम्यूनिस्टों तक सभी विचार के लोग थे, फिर भी हमने यह सोचा कि किसान सभा के लिये अधिक से अधिक राजनैतिक दृष्टिकोण की एकता प्राप्त करना और एक सर्व साधारण राजनैतिक नीति और कार्यक्रम को कार्यान्वित कराना बिल्कुल सरल और सम्भव होगा जब तक हम लोग कार्य क्षेत्र में नहीं आये और राजनीति पर अपने

प्रस्तावों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न नहीं किया, हम अपने को धोखा देते रहे और सोचते रहे कि हम एक सर्वमान्य राजनैतिक कार्यक्रम चला सकेंगे जो भिन्न भिन्न राजनैतिक दल अलग अलग नहीं कर सकते।

किन्तु जिस क्षण से हमने चाहा कि किसान सभा राजनैतिक रूप से काम करे अर्थात् दूसरे विश्व युद्ध के आरभ से.......कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं ? हमें यह पता चला कि कोई सर्वमान्य कार्यक्रम या संगठन होना असम्भव है। कांग्रेस समाजवादी दल के लोग पं० जवाहरलाल का अनुसरण कर रहे थे। कम्यूनिस्ट पार्टी चाहती थी कि कांग्रेस को उकसा कर राष्ट्रीय संघर्ष में लगा दिया जाय और तब राष्ट्रीय मंच पर अधिकार कर लिया जाय क्योंकि कांग्रेस के नेता जेलों में बन्द रहेंगे और बाहर का रास्ता साफ़ रहेगा। फारवर्ड ब्लाक के लोग उत्सुक थे कि किसी तरह राष्ट्रीय संघर्ष आरम्भ कर दिया जाय और बाकी जनता पर छोड़ दिया जाय।

हम लोगों में से जो लोग किसान सभा में थे, कांग्रेस समाजवादी पार्टी और फ़ारवर्ड ब्लाक की नीति से कुछ कुछ सहमत थे। कांग्रेस ने तो निश्चय किया था कि वह अँग्रेजी साम्राज्यवाद से दृढ़ सावधानी पूर्ण और सुनिश्चित ढङ्ग से व्यवहार करे जिससे कम से कम कष्ट और त्याग से देश को अधिक से अधिक लाभ हो।

इसलिये नागपुर के सन् १९३९ के साम्राज्यवाद विरोधी सम्मेलन में वाम पक्ष के लोगों में कोई एकता न हो सकी।

बाद में कांग्रेस समाजवादी दल ने समझौता विरोधी सम्मेलन से सहयोग करने से इनकार कर दिया। कम्यूनिस्ट पार्टी ने उसमें जाने की इच्छा रखने का बहाना किया परन्तु अपने सर्वहास पथ के अनुसार एकदम अन्त में सुभाषबाबू और कांग्रेस समाजवादी दल को गालियां देते हुये वे निकल आये। स्वामी सहजानन्द और इन्दुलाल उसमें

सम्मिलित हुये, परन्तु रंगा जी उससे बाहर ही रहे। इसलिये वामपक्ष को मिलाने के लिये जो कमेटी हम लोगों ने बनाई थी वह रामगढ़ अधिवेशन के अवसर पर दफ़ना दी गई और वाम पक्ष मिल नहीं सका। इसलिये किसान सभा एक मत से कोई राजनैतिक मंच न अपना सकी। और यह भी महसूस किया गया कि किसान सभा जनता के सामने रामगढ़ कांग्रेस से भिन्न कोई आदर्श नहीं रख सकती।

इन परिस्थितियों में किसान सभा के (१६४०) पलासा अधिवेशन में साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक संयुक्त कार्यक्रम रक्खा गया, परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी और कांग्रेस समाजवादी दल दोनों के हृदय में कुछ अन्तर था, इसलिये शीघ्र ही यह पता चल गया कि पलासा कार्यक्रम कार्यान्वित न हो सकेगा आंध्र में श्री जी० एल० नारायन ने, बिहार में स्वामी जी ने तथा किसान सभा वादियों ने अपने कार्यों से प्रस्ताव को कुछ सक्रिय रूप दिया। कुछ सौ लोग जेल गये और फ़ारवर्ड ब्लाक से मिलकर उन्होंने एक राष्ट्रीय संघर्ष का वातावरण सा पैदा कर दिया। किन्तु कम्यूनिस्ट और कांग्रेस समाजवादी दलों के लोग इनसे भिन्न रहे। राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। जब अक्तूबर सन् ४० में आंध्र किसान सभावालों ने देखा कि स्वतन्त्र रूप से संग्राम छेड़ने की उनकी पुकार असफल हो गई तो व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन का समर्थन किया और यह आशा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह बाद में जनान्दोलन हो जायगा। परन्तु कम्यूनिस्ट इस आन्दोलन को नष्ट करने का प्रयत्न करते रहे, क्योंकि वे सोचते थे कि यदि यह आन्दोलन असफल हो गया तो गांधीजी के नेतृत्व की असफलता और कांग्रेस का दिवालियापन प्रकट हो जायगा किसान सभा में समाजवादी पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी दोनों के सदस्य सम्मिलित थे, जिनमें एक व्यक्तिगत सत्याग्रह के साथ थी और दूसरी

विरुद्ध, इसलिये किसान सभा देश को कोई निश्चत नेतृत्व नहीं दे सकी।

अक्तूबर १६४१ तक किसान सभामंच पर केवल एक बात में एकता थी—वह थी जनान्दोलन चलाने में कांग्रेस की असमर्थता पर उसकी कटु आलोचना करने में। सभी राजनैतिक समस्याओं को छोड़कर केवल यही समस्या किसी संगठन को राजनैतिक आस्तित्व कैसे दे सकती है?

जब से कम्यूनिस्टों ने अपना लोक-युद्ध का नारा दिया, यह बात और भी स्पष्ट हो गई है। कम्यूनिस्टों ने केन्द्रीय किसान काउंसिल की पाकला की सभा में अक्तूबर सन् १६४१ में किसान सभा के नाम पर यह घोषणा करने की बहुत उत्सुकता प्रकट की थी कि कांग्रेस ने देश के प्रति (जनान्दोलन न चलाकर) गद्दारी की है। नवम्बर सन् १६४१ में अखिल भारतीय किसान काउंसिल की सभा में नागपुर में उन्होंने विचित्र लुढ़की ली और इस बात पर जोर दिया कि किसान सभा भी अपनी नीति खूब कुशलता से बदले और अपने साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के नारे को छोड़कर लोक-युद्ध का नारा ग्रहण कर ले। किसान सभा के शीघ्र विभाजन की यही भूमिका है। इसके पहले भी वे शताब्दी पुरानी अपनी चालों को चलने लगे थे जिसे मार्क्स ने युवक कम्यूनिस्टों को बताया था, कि किसी संगठन में घुस जाओ और उसके वर्तमान नेतृत्व में फूट डाल दो उसे बदनाम कर दो। और सदाही अपने दल के लिये महत्वपूर्ण भाग प्राप्त करने के लिये लड़ते रहो। जबसे कम्यूनिस्ट पार्टी बङ्गाल के अब्दुल्ला रसूल, किसान सभा के स्थानापन्न प्रधानमंत्री हुये उन्होंने ऐसे रास्ते और साधन अख्तियार किये कि कांग्रेस सोशलिस्टों और किसान सभावादियों ने भी अवधेशप्रसादसिंह के सभापतित्व में काम करना असम्भव पाया। इस प्रकार किसान सभा दो भागों में बँट गई और बिहार में जिसमें किसान आन्दोलन सबसे

अधिक प्रचलित था दो किसान सभायें हो गईं और कम्यूनिस्ट पार्टी के कई मंसूबे एक साथ ही पूरे हुये—कांग्रेस समाजवादी दल अकेला पड़ गया और स्वामी सहजानन्द तथा इन्दुलाल याज्ञिक भी किसान मोर्चे पर कमजोर पड़ गये। श्रीमती भारतीदेवी और जी० एल० नारायण ने एकता के जोभी प्रयत्न किये वे सब बेकार सिद्ध हुये।

नागपुर प्रस्ताव में युद्ध विरोधी नारे को छोड़कर युद्ध-प्रयत्न में सहयोग देने का वचन दिया गया इससे फ़ारवर्ड ब्लाक के लोग इतना चिढ़े कि किसान काउंसिल में उसके प्रतिनिधियों ने इस्तीफ़ा दे दिया। इस प्रकार अपने प्रान्त में भी स्वामीजी बिलकुल अलग पड़ गये। क्योंकि दूसरी किसान सभा के होने पर मूल (पुरानी) किसान सभा में अधिकांश फ़ारवर्ड ब्लाक के लोग ही रह गये थे। और किसान सभा में फ़ारवर्ड ब्लाक का ही बहुमत था। इसलिये जब स्वामीजी जेल से छूटे तो उन्हें प्रतिद्वन्दी किसान सभा के कांग्रेस समाजवादियों तथा अपनी सभा के फारवर्ड ब्लाक वालों के विरोध का सामना करना पड़ा। उन्हें अपना मार्ग स्वयं चुनना था जिसे उन्होंने जेल में ही तय कर लिया था। उन्होंने अपने प्रान्त में और अखिल भारतीय किसान मंच पर कम्यूनिस्टों के सहयोग का स्वागत किया। स्वामी जी के रहस्यपूर्ण मोर्चा परिवर्तन का यही भेद है और किसान मोर्चे पर कम्यूनिस्टो की नीति की यही सफलता है।

इस समय से यह एक महत्वपूर्ण बात हो गई कि किसानसभा में किसका दृष्टिकोण विजयी होता है—अर्थात् रङ्गाजी और उनके साथियों का कांग्रेसी दृष्टिकोण या राजाजी के फ़ारमूले से संशोधित कम्यूनिस्ट दृष्टिकोण जिसका समर्थन इन्दुलाल जी और स्वामीजी कर रहे थे। इसके पहले यह कोई महत्व की बात नहीं थी कि सभा की कार्यकारिणी या और पदों पर कौन लोग हैं, क्योंकि केन्द्रिय किसान कौंसिल के सदस्यों के राजनैतिक दृष्टिकोण में कोई विशेष भेद न था और रंगाजी

तथा स्वामीजी सभा के कार्यों का सक्रिय नेतृत्व कर लेते थे। परन्तु अब यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ था कि सभा की मशीन का नियन्त्रण कौन करता है, क्योंकि जिस किसी के भी अधिकार में यह होगी वह भविष्य के लिये सभा की राजनीति को अपने ढंग से संचालित कर सकेगा।

रंगा जी और उनके साथियों ने देखा कि कम्यूनिस्ट कांग्रेस विरोधी और राष्ट्र-विरोधी नीति को अपनाने पर तुले हुये हैं और स्वामी जी तथा इन्दुलाल जी उन्हें उनके इस कार्य में सहायता दे रहे है। इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि सभा से विधानतः अलग हुये बिना भी दक्षिण के अपने छः प्रान्तों के लिये स्वायत्त नीति चुन ली जाय। किन्तु कांग्रेस के अगस्त प्रस्ताव और किसान सभा के अक्तूबर के जनता के प्रति विश्वासघात से दक्षिणी हिन्दुस्तान के किसान सभावादी सभा से अलग होने के लिये वाध्य हो गये और पुरानी किसान कांग्रेस में फिर चले गये। इसके एक साल बाद इन्दुलालजी को किसानसभा से इस बिना पर स्तीफा देना पड़ा कि कम्यूनिस्ट किसानसभा को अपनी पार्टी का मंच बना रहे हैं और सन् १६४५ में स्वामी जी को भी किसानसभा उसी बात पर त्यागनी पड़ी जिसपर सन् १६४२ में रंगाजी ने और सन् १६४५ में इन्दुलाल जी ने उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद किया था। और आज किसान सभा अपने नग्नरूप में कम्यूनिस्टों का तमाशा बनी हुई है और उसमें पहले के संस्थापक या नेताओं में से कोई भी नहीं है। इसके विपरीत किसान कांग्रेस का विकास विशुद्ध देशभक्ति पूर्ण किसान संगठन के रूप में किया जा रहा है। इसका तात्पर्य क्या है?

इसका यह साफ मतलब होता है कि किसान कांग्रेस वालों का वह विचार बिलकुल गलत था कि किसान वर्ग की एक स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ता हो सकती है, और इसमें वे सभी राजनैतिक दल जो

आपस में लड़ते रहते हैं, मिलकर काम करेंगे और एक संयुक्त कार्यक्रम चलायेंगे।

एक न एक राजनैतिक दल अवश्य ही सारे संगठन पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहेगा। हर एक महत्वपूर्ण राजनैतिक मसले पर वह अवश्य ही अपने दल की विचार धारा का अनुसरण कराना चाहेगा और यह चाहेगा कि दूसरे दलों से सम्बन्ध रखने वाले लोग भी उसी की नीति का अनुसरण करें। ऐसी परिस्थिति में ट्रेडयूनियन कांग्रेस की कहानी फिर दुहरा उठेगी। गत महायुद्ध में भी अनेक योरोपीय देशों के वर्ग संगठनों में फूट पड़ी, क्योंकि उसमें रहने वाले विभिन्न राजनैतिक दलों के लोगों में मौलिक राजनैतिक मतभेद थे। इसलिये इस प्रकार का वर्ग संगठन या तो टुकड़े-टुकड़े हो जायगा या राजनीति से तटस्थ रहेगा। उसके लिये तीसरा रास्ता नहीं है।

क्या वर्ग सङ्गठन राजनीति से अलग रह सकता है ?

ऐसा असम्भव है, क्योंकि मार्क्स और लेनिन ने इस बात को उचित रूप से स्वीकार किया है कि हर एक आर्थिक संघर्ष का परिणाम राजनैतिक संघर्ष होता है और वर्ग संगठन में आर्थिक संघर्ष (फलतः राजनैतिक भी) अनिवार्य होता है।

क्या वर्ग सङ्गठन को राजनीति से अलग रहना चाहिये ?

स्पष्ट है कि वर्ग संगठन को राजनीति से अलग नहीं रहना चाहिये। क्योंकि ऐसी नीति उस संगठन और वर्ग दोनों के लिये आत्मघातक सिद्ध होगी। यदि राजनैतिक संघर्ष बचाया जाय तो केवल ऐसे ही छोटे-छोटे आर्थिक संघर्ष चलाये जा सकते हैं जो उस वर्ग-संगठन को किसी भी शोषक वर्ग के या उसके आधीन किसी भी राजनैतिक संस्था के विरुद्ध न खड़ा कर दे। तब उसकी नीति केवल साधारण आर्थिक नीति होगी और वह कुछ छोटी-छोटी आर्थिक माँगों को

दिलवाने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझेगा और वह भी बहुत क़ानूनी ढङ्ग से अर्जियाँ पेश करके बड़ी नम्रता से। ऐसी अनेक किसान या सर्वहारा संस्थायें रही हैं परन्तु राजनैतिक शक्ति के रूप में वे सब समाप्त हो गई हैं क्योंकि वे उन संगठनों में उचित वर्ग चेतना भी नहीं भर सकी हैं, उन्हें एक प्रगतिशील शक्ति बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

इसलिये कोई भी क्रान्तिकारी वर्तमान वर्ग संगठन को इस पतित और निर्बेज़ हालत में डालना नहीं चाहेगा।

वर्ग संगठनों की उनकी अपनी राजनीति होनी ही चाहिये उनको राजनैतिक क्षेत्र में अपना पार्ट अदा करना चाहिये और ऐसे बड़े वर्ग संघर्षों के लिये भी तैयार रहना चाहिये, जिनका बहुत महत्वपूर्ण राजनैतिक परिणाम हो। फिर ऐसी राजनीति का स्वरूप क्या होगा ? हमने सन् १९३६–४२ के हिन्दुस्तान में अपने अनुभव से देखा है कि किसी भी वर्ग की नीति ऐसी नहीं होगी जिसे सभी राजनैतिक दल स्वीकार करते हों। क्योंकि आजकल एक न एक दल प्रमुख स्थान ले लेगा और दलगत प्रतिद्वन्दिता की चट्टान पर सारा वर्ग–संगठन टुकड़े–टुकड़े हो जायगा।

इसलिए हम लोग इस धारणा से स्वतन्त्र नहीं हो सकते कि वर्ग संगठन को देश के एक न एक राजनैतिक दल की नीति को अपनाना पड़ेगा। युद्ध के पहले की जर्मनी फ्रांस या और दूसरे योरोपीय देशों की भांति जहां एक ही पार्टी न हो, वहां उस वर्ग के लिये काम करने वाले अनेक दल मिलेंगे। अमेरिका के कैथालिक, कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट और नाज़ी मज़दूरों के ऐसे ही भिन्न भिन्न संघ हैं। लेबर फेडरेशन (श्रमिक संघ) और माइनर्स फेडरेशन (खान के मज़दूरों का संघ) एक मंच पर आने में असमर्थ हैं, क्योंकि वे विभिन्न राजनैतिक सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखते हैं। हमारे देश में भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस

से रायवादियों के मतभेद होने के पहले भी रेलवे आदि बहुत सी नौक-रियों में मज़दूरों के लिये विभिन्न साम्प्रदायिक संघ थे।

उपनिवेशीय देशों में एक वर्गीय राजनीति असंभव है?

ऐसे समय हुआ करते हैं जब किसी देश की सामाजिक क्रान्ति में एक वर्गीय राजनैतिक दल या संगठन कोई सफलता नहीं पा सकते। यूरोपीय सर्वहारा या श्रमिक वर्ग और समाजवादी दलों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है।

जब तक सर्वहारा वर्ग किसानों और प्रजा को सन्देह और अनादर की दृष्टि से देखता है, तब तक वे भी सर्वहारा दल के हाथों में अपना भाग्य सौंपने को तैयार न होंगे। और इन पारस्परिक अविश्वास और राजनैतिक मतभेदों से योरोप में सिद्धान्तों में राजनैतिक एकता तथा नीति और नित्य प्रति के कार्यक्रम में समता नहीं आने पाई। बाद में उनके क्रान्तिकारी प्रयत्न ढीले पड़ गये और अन्त में राजनैतिक प्रति-द्वन्दिता असंगठन तथा फासिज्म और नाजीवाद के जन्म के लिये रास्ता साफ हो गया।

रूस के किसानों का राजनैतिक अनुभव

रूस के किसानों के अनुभव भी बहुत शिक्षाप्रद हैं रूस के किसानों का राजनैतिक नेतृत्व अधिकतर समाजवादी क्रान्तिकारियों ने किया, किन्तु उस दल का ध्यान बिलकुल किसानों की ओर ही रहा। उसका सर्वहारा या नगरों की जनता से कोई सम्बन्ध न था। इसलिये जब सामाजिक क्रांति के नेतृत्व का सवाल आया तो कम्यूनिस्टों का राज-नैतिक दल जो सर्वहारा और कुछ अँश तक किसानों का भी नेतृत्व करने का दावा करता था, समाजवादी क्रान्तिकारियों से आगे बढ़ गया। इस बात को स्वयं विजयी लेनिन ने स्वीकार किया है। लेनिन को केवल यह करना पड़ा कि उन्होंने समाजवादी क्रान्तिकारियों द्वारा

बनाया हुआ २४२ विषयों का अल्पतम कार्यक्रम पूर्ण रूप से लिया और किसानों से कहा, हम तुम अपना ही कार्यक्रम वरतो।

लेनिन ने बहुत थोड़े ही समय में समाजवादी क्रान्तिकारियों का खातम कर दिया। क्योंकि वह पहले तो किसानों के और भी अच्छे मित्र बन गये और फिर उनके नेतृत्व में फूट पैदा करदी और वामपक्ष को अपना साझीदार बना लिया और अन्त में किसानों की सर्वहारा की तानाशाही में सम्मिलित करने से इनकार कर दिया।

क्योंकि जहां किसी वर्ग का नेतृत्व छिना, वह बहुत दिनों के लिये विवश और अपंग सा हो जाता है और इसी बीच दूसरे वर्ग और उनका नेतृत्व अपनी चालें चलकर उस पराजित वर्ग के बहुत बड़े भाग को अपना साथी बना लेते हैं और शेष विद्रोही भाग का प्रबन्ध इन्हीं वफ़ादार लोगों की सहायता से कर लेते हैं।

विभिन्न वर्गों से सम्पर्क

हिन्दुस्तान के किसानों को रूस और दूसरे देशों के किसानों के अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। यदि वे केवल अपने ही राजनैतिक दल से पूर्णतः सन्तुष्ट रहते हैं (जैसा कि वे हैं) और दूसरे राजनैतिक दलों या वर्गों से कोई भी सैद्धान्तिक या कार्यक्रम सम्बन्धी सम्पर्क या सहयोग नहीं रखते और अपना एक संयुक्त राजनैतिक सिद्धान्त भी नहीं रखते, तो कम्यूनिस्ट पार्टी या ऐसा दूसरा कोई भी राजनैतिक दल उनका देखते देखते निपटारा कर देगा, जो एक वर्ग के संगठन पर निर्भर रहते हुये भी, अपने राजनैतिक सिद्धान्तों के आधार पर दूसरे वर्ग या वर्गों का सहयोग प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः इसी एक दशा में हम असफल हुये हैं और किसानों के सामने ऐसा स्पष्ट कार्यक्रम नहीं रख सके हैं जिससे वे एक राजनैतिक सिद्धान्त और संगठन को स्वीकार करने की आवश्यकता को समझें जो सभी या अधिकाधिक वर्गों के हितों के लिये काम करने का दावा कर

सके और अपने उद्देश्य तथा कार्यक्रम में मुख्यतः किसान वादी होते हुये भी अधिक से अधिक श्रमिकों का नेतृत्व पा सके।

रंगा जी ने दिसम्बर सन् १६३६ में अखिल भारतीय किसान कांग्रेस में फैजपुर में यह घोषित किया कि कांग्रेस वह सर्वमान्य मंच है जिस पर सभी संगठन मिलते हैं, अपने अनुभवों का आदान प्रदान करते है, अपने साधनों को एकत्रित करते और पारस्परिक सहयोग से भविष्य के कार्यों के लिये प्रेरणा पाते हैं।

उन्होंने यह भी कहा, कि जब तक हम स्वराज्य न प्राप्त करलें कांग्रेस हमारा सबसे बड़ा संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा होगा और दूसरे सभी संगठन इस प्रकार अपनी नीति का संचालन करेंगे जो कांग्रेस के राष्ट्रीय और साम्राज्य विरोधी रुख के अनुकूल हो। परन्तु उस समय उनका विचार था कि किसान संगठन और दूसरे श्रमिक संघ स्वतंत्र राजनैतिक अस्तित्व भी रख सकती हैं। और उनका दृष्टिकोण ही किसान कांग्रेस तथा किसान सभा सामान्य दृष्टिकोण रहा है। परन्तु उस समय से बहुत सी घटनाऐं घटी हैं। कम्यूनिस्ट किसान सभा के नित्यप्रति के कार्यक्रम द्वारा किसान राजनीति पर अपना विचित्र रंग चढ़ाया है। उन्होंने अनेक जगहों पर किसान सभाओं को कांग्रेस कमेटियों के विरुद्ध लड़ा दिया है, तथा मंत्रियों और नेताओं के खिलाफ़ उन्हें खड़ा कर दिया है। इस प्रकार के अपने कारनामों से उन्होंने कांग्रेस और किसान सभाओं में प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता की परम्परा खड़ी कर दी है। यह सब इस भूल का ही परिणाम है कि हमने सोचा कि किसान संगठन स्वतंत्र राजनैतिक दल हो सकते हैं।

इसलिये एक सच्चे यथार्थवादी होने के नाते रंगाजी ने इस नीति में मौलिक अन्तर की आवश्यकता का अनुभव किया है वे यह मानते हैं कि किसान संगठनों की कोई स्वतंत्र राजनीति नहीं हो सकती और गुलाम देश की सारी श्रमिक जनता की राजनीति उनके सर्वमान्य

राष्ट्रीय क्रान्तिकारी मोर्चे की राजनीति से भिन्न नहीं हो सकती अर्थात् हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय कांग्रेस, चीन की कुओ मिन तांग और मिश्र की वफ़्द पार्टी से उनकी प्रतिद्वन्दिता नहीं हो सकती।

यदि किसानों का राजनैतिक नेतृत्व दूसरे वर्गों या समूचे राष्ट्र के नेतृत्व से अलग हो जाता है, तो इस बात का खतरा रहता है कि कोई भी बहुवर्गीय राजनैतिक संगठन किसानों के राजनैतिक नेतृत्व को पीछे धकेल दे और स्वयं सभी श्रमिक वर्गों (किसानों को लेकर) का सफल प्रतिनिधि बन जाय। सोवियत रूस में बोलशेविकों ने इसी चाल से काम लिया था। इसलिये यह अनिवार्य है कि किसान बहुवर्गीय राजनीति के पक्ष में रहें।

कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टी में किसका अनुसरण किया जाय?

और कौनसा बहुवर्गीय राजनैतिक दल किसानों के लिये सबसे बेहतर प्रगतिशील और क्रान्तिकारी दल हो सकता है? स्पष्ट बात है कि यह न तो कम्यूनिस्ट पार्टी हो सकती है न कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी क्योंकि उनका उद्देश्य केवल सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना करना है। यह मुस्लिम लीग भी नहीं हो सकती क्योंकि वह दूसरे धर्म वालों को सम्मिलित नहीं करती।

यह केवल राष्ट्रीय कांग्रेस ही हो सकती है। जिस प्रकार मार्क्सवादी यह दावा करते है कि कम्यूनिस्ट पार्टी क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की पार्टी है, उसी प्रकार राष्ट्रीय कांग्रेस ने हरिपुरा अधिवेशन में इस बात का दावा किया है कि वह मुख्यतः किसानों का संगठन है। "दूसरा कोई ऐसा संगठन नहीं है जो गाँवों का ग्रामीण, जनता और ग्रामीण संस्कृति का ऐसा समर्थक हो और किसानों को अपने कार्यक्रम के केन्द्र में रखता हो।

कम्यूनिस्ट पार्टी के विपरीति कांग्रेस दूसरे दलों को सन्देह अविश्वास और अनादर की दृष्टि से नहीं देखती वस्तुतः वह सर्वहारा के लिये भी जो कुछ सम्भव है करती है वह बुद्धि जीवियों की सांस्कृतिक महत्वा कांक्षाओं और उद्देश्यों का आदर करती है। वह हरिजनों, खेतों पर काम करने वाले मजदूरों और सभी दलित जनों की सबसे बड़ी और सच्ची समर्थक है। यह कारीगरों के वर्ग की भी सबसे अधिक हितैषिणी है यह सभी श्रमिक वर्गों का संगठन बन रहा है और एक ऐसी राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने जा रही है जिसमें सच्ची ताक़त केवल खेतों, कारखानों और दूसरी जगह काम करने वालों के हाथ में रहेगी। इसलिये किसानों का नेतृत्व करने वाली राजनैतिक पार्टी वल केकांग्रेस ही हो सकती है।

कांग्रेस में आकर और कांग्रेस के लिये काम करके और कारीगरों ग्रामींण जनता दूसरे सर्वहारा और प्रजा की राजनीति में पूरा भाग लेकर ही जनता के नेता एक दूसरे के सम्पर्क और सहयोग में आवेंगे और एक ठोस राजनैतिक दल बना सकेंगे जो एक ओर तो पूंजीपति वर्ग तथा साम्राज्यवाद की देश द्रोही, किसान विरोधी, प्रजाविरोधी चालों से किसानों और राष्ट्र के हितों की रक्षा करेगा और दूसरी ओर कम्यूनिस्टों से।

बढ़ते हुये सर्वहारा के हितों की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि वे कांग्रेस की छात्रछाया में लाये जांय। राष्ट्रीय कांग्रेस के संयुक्त मंच पर ही किसान और सर्वहारा के बीच सच्चा सार्वजनिक सम्पर्क स्थापित हो सकता है। इङ्गलैण्ड की कम्यूनिस्ट पार्टी भी सर्वहारा की तानाशाही अभी नहीं प्राप्त कर सकी है क्योंकि उसे दूसरे वर्गों की सहायता या विश्वास नहीं प्राप्त हो सका है और मजदूरों के बहुसंख्यक भाग का सहयोग भी उसे नहीं प्राप्त हो सका है। इसलिये कम्यूनिस्ट पार्टी उनके लिये एक अन्धी गली के समान है, जिससे निकलने का कोई

रास्ता नहीं। वे अपनी और सभी श्रमिकों की सर्वोत्तम सेवा तभी कर सकते हैं जब ये किसानों की भांति कांग्रेस के साथ काम करने के लिये तैयार हो जांय और उसका राजनैतिक नेतृत्व स्वीकार कर लें।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय कांग्रेस सदा ही दृढ़तापूर्वक सारे राष्ट्र के हितों के लिये लड़ती रही है और प्रत्येक समस्या को इसने राष्ट्र के हित की दृष्टि से ही देखा है और पिछली दशाब्दियों में यह सर्व-साधारण जनता के हित की दृष्टि से ही प्रत्येक समस्या पर अपना निर्णय दिया है।

केवल कांग्रेस ने ही प्रत्येक वर्ग के सबसे बड़े भाग और जनता की सबसे अधिक संख्या को ऊपर उठाया है और अपने बार बार के त्याग और क्रान्तिकारी संघर्ष से उनका विश्वास तथा सम्मान प्राप्त किया है। इसने उनके हृदय में राष्ट्रीय भावना भरी है। शहीदों के खून से उनकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति को सजग किया है और सारे उपनिवेशीय संसार में हिन्दुस्तान की जनता को एक महान क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में प्रति-ष्ठित किया है।

इसने जनता के सबसे महान् और सबसे सच्चे समर्थक महात्मा गाँधी को अपना नेता माना है और किसान मज़दूर प्रजा राज को गाँधी जी की नीति को सबसे अधिक बल दिया है। इस विश्व युद्ध की शक्तियों और महात्मा जी तथा पण्डित नेहरू के अद्भुत प्रभाव से इसमें महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं और आज यह इस निर्णय पर पहुँचो है कि स्वतन्त्र भारत में सारी शक्ति श्रमिकों—किसानों कारीगरों सर्वहारा और प्रजा के हाथ में होगी। और अपने बार बार के अनेकों किसान सत्याग्रह आन्दोलनों के द्वारा जो सन १६२०, १६३० और १६४२ के राष्ट्रीय संघर्षों में चलाये गये तथा आर्थिक मन्दी (१६२६-३१) और मन्त्रित्व के दिनों में चलाये हुए किसान आन्दोलनों के नैतिक सम-

र्थन द्वारा कांग्रेस ने किसानों में वर्ग चेतना भरने में पूर्ण सहायता दी है किसान संगठन बनाया तथा किसान नेताओं और कार्य-कर्ताओं का निर्माण किया है।

पराधीन जनता की केवल एक राजनैतिक पार्टी

यह एक ध्रुव सत्य है कि हिन्दुस्तान जैसे गुलाम देश में केवल एक राजनैतिक कार्यक्रम है जो हमारा सारा ध्यान आकर्षित करता है। यह कार्यक्रम है राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति। साम्राज्यवाद की छाया में भी दूसरे वर्ग जैसे कारखाने दार, व्यापारी वर्ग और बहुत से पेशेवर लोग भी थोड़ी बहुत उन्नति कर सकते हैं। किन्तु श्रमिक जनता किसी भी क्षेत्र में कोई सन्तोषजनक उन्नति नहीं कर सकती। वे किसी भी शोषक वर्ग पर तब तक धक्का नहीं पहुँचा सकते जब तक कि देश की स्वतन्त्रता न प्राप्त हो और वे स्वतन्त्र भारत में थोड़ी शक्ति न प्राप्त करलें।

जमींदारी प्रथा को खतम करने के लिये, बैंकिंग और महाजनी के राष्ट्रीय करण तथा राज्य के संरक्षण में अनेक मूल उद्योगों के विकास के लिये देश की स्वतन्त्रता अनिवार्य है। खेती की उपज का उचित मूल्य देने और अपने सामान का एकसाँ दर पर बेचने को देश के सारे व्यापारियों और कारखाने दारों को बाध्य करने के लिये वर्तमान साम्राज्य वादी सरकार अवश्य खतम होनी चाहिये और हिन्दुस्तान को संसार के दूसरे स्वतन्त्र देशों के साथ बराबरी का दर्जा मिलना चाहिये।

दूसरे उपनिवेशों के लिये भी यही बात लागू होती है। इन परि-स्थितियों में प्रत्येक सगठित तथा जाग्रत किसान और मज़दूर का यह कर्तव्य है कि वे अपनी सबसे महान् और व्यापक संगठन राष्ट्रीय कांग्रेस को ताक़तवर बनाना चाहिये। क्योंकि इस संगठन के प्रति देश की

समस्त जनता का विश्वास है और यही एक संस्था है जो आज़ादी के लिये एक सफल संघर्ष छेड़ सकती है, चाहे वह सत्याग्रह हो, चाहे वैधानिक या रचनात्मक-कार्यक्रम-सम्बन्धी।

इसलिये यदि वर्ग संगठनों के लिये किसी राजनीति की आवश्यकता है, तो वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राजनीति होनी चाहिये। राष्ट्रीय राजनीति की सीमा के भीतर किसानों और मजदूरों के संघ अपना वर्ग-संघर्ष छेड़ सकते हैं जिनका कुछ न कुछ राजनैतिक प्रभाव अवश्यंभवी है। दूसरे राजनीति का अनुसरण या तो उन्हें अन्धी गली में डाल देगा या उनकी राजनैतिक हत्या हो जायगी। उदाहरण के लिये यदि वे राजभक्तों का पथ ग्रहण करते हैं तो उन्हें कोई रास्ता नहीं मिलेगा और वे पूर्णतः निराश होंगे, परन्तु कम्यूनिस्टों का साथ देना तो एक प्रकार की राजनतिक आत्महत्या है क्योंकि कम्यूनिस्ट किसानों या मज़दूरों या दोनों को उसी राष्ट्रीय कांग्रेस या राष्ट्रीय संघर्ष के विरुद्ध लड़ा देंगे जो हमारी आजादी के लिये लड़ने वाली एक मात्र संस्था है।

इसका यह मतलब नहीं कि किसान-मज़दूर-संघ अपने राजनैतिक विचार ज़ाहिर ही न करें या संसार की घटनाओं के प्रति अपना दृष्टि-कोण छिपा रक्खें। परन्तु इसका यह तात्पर्य अवश्य है कि वे जो कुछ भी करें वह कांग्रेस के सामान्य राजनैतिक सिद्धान्तों और नीति के अनुकूल हो। इसका यह अर्थ अवश्य है कि वे इस प्रकार का प्रचार न करें जो उस राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे को निर्बल बनावे जिसे देश की आज़ादी को शीघ्र और अच्छी तरह प्राप्त करने के लिये कांग्रेस अपने अनेकों वर्षों के अनुभव से बनाने का प्रयत्न कर रही है।

इसलिये अन्त में सभी वर्ग-संगठनों को सभी मौलिक समस्याओं या संघर्ष आदि के प्रश्न पर कांग्रेस की नीति का अनुसरण करना चाहिये।

इस नीति का औचित्य और उसकी अनिवार्यता स्पष्ट और स्वीकार्य हो जायगी यदि कम्यूनिस्ट प्रेमी किसान बेज़वाड़ा किसान सभा मे स्वीकार की हुई बातों को याद रक्खा जाय, भयंकर परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमारी पूर्णतः सोची विचारी हुई नीति भी शासकों के मस्तिष्क पर कोई असर नहीं करती। बिना राजनैतिक परिस्थिति के जनता की बाहरी एकता का कोई महत्व नहीं, क्योंकि इस प्रकार की एकता आत्मा के बिना शरीर के बराबर है। यदि कम्यूनिस्टों ने इस युद्ध की परिस्थितियों से विवश होकर ज़मींदारों के विरुद्ध अपने संघर्षों और मिल मालकों के विरुद्ध हड़तालों को स्थगित कर दिया है, और इस नीति को उनके द्वारा संचालित किसान मज़दूर संघ स्वीकार करते हैं, तो सभी किसान या मज़दूर समस्याओं में कांग्रेस के निर्णय या उसकी सलाह को मानने में अधिक औचित्य है। क्योंकि हम सभी इस बात को महसूस करते हैं कि साम्राज्यवादी शासकों को देश से निकालने के लिये आज सभी वर्गों की एकता आवश्यक है। हमारे राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचारों को उसी दृष्टि से देखना है।

यह एक विचित्र बात है कि कम्यूनिस्टों द्वारा बहकाये हुये किसान उस समय सब वर्ग संघर्ष छोड़कर अपने हथियार रख देते हैं, जब स्थिर स्वार्थी वर्ग जनता पर अधिक दबाव लाद रहे हैं और किसान अपने को इस बात से धोखा दे रहे हैं कि फ़ासिस्ट विरोधी हितों की अपनी इस नीति से वे सेवा कर रहे हैं। परन्तु वे ही (कम्यूनिस्ट प्रभावित) किसान स्वतन्त्रता के लिये देश की लड़ाई के दिन प्रति दिन के कार्य-क्रम और संघर्ष में मदद देने के लिये तैयार नहीं। किसानों को ऐसी ग़लत फ़हमी में नहीं पड़ना चाहिये। किन्तु उनका यह ग़लत दृष्टिकोण कम्यूनिस्टों के स्वार्थी नेतृत्व के कारण है। ये कम्यूनिस्ट पार्टी के लोग अपनी व्यक्तिगत तथा दलगत महत्वाकांक्षाओं, अभिमान और

प्रतिक्रिया को राष्ट्रीय हितों से ज़्यादा महत्व देते हैं। देश के हितों की जगह वर्ग-हितों का ध्यान रखते हैं और इस बात को समझ नहीं पाते कि किसान, मजदूर और राष्ट्रीय मोर्चे पर कम्यूनिस्ट कैसी गद्दारी कर रहे हैं। सारी देश भक्त जनता का यह कर्तव्य है कि अपने वर्ग संगठनों को वे ऐसे गद्दारों के प्रभाव से स्वतन्त्र रक्खें। वे राष्ट्रीय हितों के लिये खतरनाक हैं।

इसका यह तात्पर्य है कि वे वर्ग—संगठन जो सचमुच देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में कुछ भाग लेना चाहते हैं, अपने साथ ऐसे लोगों को हरगिज नहीं रहने दे सकते जिनका काम देशद्रोह पूर्ण है और जो राष्ट्र—विरोधी और साम्राज्यवाद समर्थक नीति का प्रचार करते हैं। ऐसे हैं ये कम्यूनिस्ट। उनका घोर विश्वासघात सभी किसानों और मजदूरों के लिए एक ज्वलन्त चेतावनी है कि वे अपने संगठनों को कम्यूनिस्ट प्रभावित बहु वर्गीय मंच न बनने दें। इसीलिये हमने अपनी किसान कांग्रेस की नीति को अपना लिया है। अपने नाम से ही यह राष्ट्रीय कांग्रेस के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति वफ़ादार होगी। इसमें कांग्रेस की राजनीति के अतिरिक्त दूसरी कोई राजनीति नहीं होगी। इसमें कम्यूनिस्टों या उन दूसरे गद्दारों के लिये कोई जगह नहीं है जिन्होंने हमारे देश भक्तों को पाँचवे कालम का व्यक्ति और देश द्रोही कहा है और जिन्होंने साम्राज्यवादी युद्ध में सहायता की तथा देशभक्तों को गिरफ्तार कराया है।

आमूल परिवर्तन की आवश्यकता

उपरोक्त कथन का यह स्वाभाविक निष्कर्ष है कि किसानों और सर्वहारा को अपने वर्ग संगठन और कांग्रेस की राजनीति में समन्वय करने के लिये उन तमाम नये लोगों को छांटना होगा, जिनके विचार संदेहपूर्ण हैं। इसमें उनको इतना अनासक्त, हिम्मतवर और क्रान्तिकारी

होना चाहिये जितना गांधी जी और स्तालिन हैं। उदाहरण के लिये अगर गांधी जी ने यह अनुभव किया कि वे देश के क्रान्तिकारी हितों की सर्वोत्तम सेवा के लिये किसी संस्था विशेष से अपना नाता या मोह छोड़ दें तो २० वर्षों के परिश्रम से बनाये हुये साबरमती आश्रम को उन्होंने छोड़ दिया। उसी प्रकार जब स्तालिन ने महसूस किया कि सोवियत पार्टी और कम्यूनिस्टों का हित इसी में है तो उन्होंने कम्यूनिस्ट इण्टर नेशनल को छिन्न-भिन्न कर दिया जिसके विकास के लिये सन् १९४२ में ही उन्होंने लेनिन की शपथ ली थी और कम्यूनिस्ट इण्टर नेशनल का गीत भी छोड़ दिया। अमेरिका की कम्यूनिस्ट पार्टी ने यह देखकर कि युद्ध के सङ्कट काल में तीसरे राजनैतिक दल के लिये कोई स्थान नहीं है अपने को खतम कर दिया। क्योंकि उन्होंने सोचा कि कम्यूनिस्ट विचारों के प्रचार के लिये सैद्धान्तिक प्रचार आवश्यक है न कि पार्टी का दबाव, इसी तरह हिन्दुस्तान के किसान मज़दूरों को भी आवश्यक परिवर्तन करना है चाहे ये परिवर्तन बहुत गम्भीर और भयंकर ही क्यों न लगें।

राष्ट्रीय झण्डा ही हमारा झण्डा है

इसीलिये हम यह कहते हैं कि किसान मज़दूरों को राष्ट्रीय झण्डे से सन्तुष्ट रहना चाहिये और लाल झण्डे का मोह छोड़ देना चाहिये। किसान सभाओं ने जब से लाल झण्डा अपनाया है, उनमें और कांग्रेस जनों में बहुत भेद बढ़ गया है। पण्डित नेहरू और आचार्य नरेन्द्र देव आदि तथा किसानों में इससे बहुत मनमुटाव सा होगया है। यह तो निश्चित ही है। इससे कांग्रेसवादी किसानों और वर्ग चेतना पूर्ण किसान मज़दूरों की एकता का प्रमाण नहीं मिला है। हमारे सन् १९३७-४४ के अनुभव से पण्डित जी की चेतावनी सही सिद्ध हो गई है कि लाल झण्डे के अपनाने से किसानों में भ्रम फैलता है और किसान संगठन तथा राष्ट्रीय कांग्रेस में फूट का बीज बोया जाता है।

इससे यह सन्देह पैदा होता है कि कांग्रेस के अनुसरण तथा किसान सभा की नीति में कोई मौलिक मतभेद है।

इसके अतिरिक्त कम्यूनिस्टों के घातक विश्वासघात के कारण और हमारे राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन पर सोवियत रूस की सरकार के दुष्प्रभाव को ध्यान में रखते हुये यह निश्चित मालूम होता है कि कम्यूनिस्ट पार्टी लाल झण्डे को हमारी राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न करने के लिये इस्तेमाल कर सकती है। हमारी राष्ट्रीय जागृति और भक्ति को नष्ट करके हमें सोवियत रूस का पुछल्ला बनाया जा सकता है।

इस बात को ध्यान में रखने पर कि लाल झण्डा, कम्यूनिस्ट पार्टी का भी झण्डा है, इसे स्वीकार करने पर किसानों को यह ग़लत धारणा हो सकती है कि यदि वे कम्यूनिस्टों की कुछ अनावश्यक सबक और राष्ट्र-विरोधी बातों को छोड़ दें तो कम्यूनिस्ट पार्टी और उसके सिद्धान्त स्वीकार किये जा सकते हैं। यदि हम लाल झण्डे को अपना झण्डा मानते हैं तो हमारा हृदय अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति से अधिक भर जायगा और हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्ति दब जायगी।

इसके अतिरिक्त जैसे सोवियत रूस ने राष्ट्रीयता पर जोर दिया है और जनता का ध्यान पहले-पहल राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की ओर लगाया है अन्तर्राष्ट्रीय गीत को छोड़कर अपना राष्ट्रीय गीत अपनाया है और कमिंटर्न के झण्डे से भिन्न अपना राष्ट्रीय झण्डा रक्खा है। उसी प्रकार यह बिल्कुल उचित है कि देश की जनता अपने सामने राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी को सबसे प्रमुख स्थान देगी। और वे अपने राष्ट्रीय झण्डे को ही जो उनके राष्ट्रीय नेतृत्व का प्रतीक है अपनायेंगे। इसलिये किसानों और मज़दूरों को हम यह सलाह देते हैं कि वे लाल झण्डे को छोड़कर केवल राष्ट्रीय झण्डे को अपनावें।

यह याद रखने की बात है कि दक्षिण भारतीय मज़दूर संघ के अमर शहीद एन० जी० रामा-स्वामी के नेतृत्व में कोयम्बटूर की ट्रेड यूनियन और सरदार पटेल तथा गुलजारी लाल नन्दा के नेतृत्व में अहमदाबाद का मज़दूरसंघ हमेशा तिरङ्गे झण्डे के नीचे रहा है और इन संगठनों ने सन् १९४२-४४ के राष्ट्रीय सङ्कट में तत्परता से देश का साथ दिया है।

किसान सत्याग्रह कब होना चाहिये ?

हमें अपने विगत एवं वर्तमान अनुभव तथा विचारों के प्रकाश में अपनी माता राजनीतिक संस्था, उससे सम्बन्धित राजनीतिक संस्थाओं तथा उसके साम्राज्यविरोधी संघर्षों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए किसानों के कष्टों को दूर करने तथा उनकी अवस्था को सुधारने के लिये वर्ग-संगठन बनाने और उनके संघर्षों को आरम्भ करने तथा संचालित करने का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि हमें केवल ऐसी वर्त्तमान मांगों की पूर्त्ति के लिये, जो बिना राष्ट्रीय-संयुक्त-मोर्चा तथा इसे बनाये रखने और प्रयोग करने में कांग्रेस के प्रमुख-राष्ट्रीय-कार्य को विपत्ति में डाले प्राप्त की जा सकें, अपनी आवाज उठानी है और कार्य करना है। यदि इस प्रणाली से कार्य किया गया तो हम अपने राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्त्ति की ओर अग्रसर होंगे और इससे श्रमिक वर्ग के लिये कहीं अधिक आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार एवं शक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी और इस प्रकार इसके द्वारा 'किसान मजदूर-प्रजा राज' की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा। और हम यह पहले देख चुके हैं कि किस प्रकार यह नया क़दम गत पाँच वर्षों में इस युद्ध के द्वारा थोपी हुई नीति से मेल खाता है।

उस समय भी जब कम्यूनिस्ट पार्टी अपनी क्रान्तिकारी पराजय-वाद की नीति पर चल रही था, वह अधिक कल-कारखानों की हड़ताल कराने में असमर्थ थी। प्रथम तो भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत चलाई हुई अधिकारी-वर्ग की दमनकारी नीति ही ऐसी थी जिससे कि ट्रेड-यूनियन वालों के नेता और साधारण लोग दोनों ही भयभीत थे। दूसरे सरकार श्रमिकों की आधे से अधिक माँगो को कारखानों में शान्ति रखने की गरज से स्वकीार करने में शीघ्रता करती थो। तीसरे एकबार दैनिक-प्रयोग की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर बहुत से भारतीय मजदूर व्यक्ति कम्यूनिस्टों के अनुयायी बनने, हड़ताल करने तथा जेल जाने आदि का विचार नहीं करते थे। अतः कुछ हो सौ वाममार्गियों को गिरफ्तार करने से सरकार श्रमिक मोर्चे पर शान्ति बनाये रखने में सफल रही।

जब से रायवादियों तथा कम्यूनिस्टों ने युद्ध-पक्षीय नीति को अपनाया, होने वाली हड़तालों का भय जाता रहा, और सरकार तथा श्रमिक वर्ग प्रसन्न एवं संयुक्त परिवार की भाँति रहने लगे।

इसके लिये कम्यूनिस्ट कारखानों के मोर्चे की इस शान्ति की व्याख्या को दूर रखने की चेष्टा करते हैं और उत्तर देते हैं कि सरकार के युद्ध-प्रयत्न समस्त श्रमिकों के सबसे बड़े एवं महत्वपूर्ण सम्बन्ध की वस्तु है और इस कारण कारखानों तथा उत्पादन-भूमि के मोर्चों पर हड़तालों के समस्त विचारों को, उनकी दैनिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये भी त्याग देना चाहिये और गृह-मोर्चे पर शान्ति बनाये रखनी चाहिये। हमारा कहना यह है कि भारत की और भारतीय जनता की स्वराज्य प्राप्त करने की आवश्यकता कहीं अधिक ध्यान दिये जाने योग्य, गम्भीर तथा आवश्यक वस्तु है। अतः हड़ताल तथा सत्याग्रह के किसी भी स्वतन्त्र प्रयोग द्वारा विशेषतः कृषकों तथा श्रमिकों के वर्त्तमान वर्ग हितों में, राष्ट्रीय-क्रान्तिकारी-संघर्ष को

शक्तिशाली बनाने तथा उसे कमज़ोर बनाने के समस्त अवसरों को दूर करने के लिये हमें कम से कम अपना विचार तथा सम्बन्ध दिखाने के लिये तैयार रहना चाहिये।

किसानो ! वर्ग-एकता क़ायम करो।

किसानों के बीच विभिन्न समूह तथा श्रेणियों की समस्या की हम कुछ समीप से परीक्षा करें। यह भी याद रहे कि भारतीय कम्यूनिस्ट भी १९३६ में हमारे आन्ध्र-किसान-सम्मेलन में 'किसानों को विभाजित और असङ्गठित करो' की लेनिनवादी नीति को तोते की भाँति दुहराने लगे थे। परन्तु उन्होने शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि वे किसानों के शत्रु-ज़मींदारों तथा साहूकारों से तभी लोहा ले सकते हैं, केवल जब वे किसानों को सङ्गठित होने में सहायता देते हैं, उन्हें धनी, मध्यवर्गीय तथा निर्धन किसानों के समूहों को विभाजित करके नहीं।

किसान मोर्चे पर १२ वर्षों के कार्य के अनुभव के आधार पर जब किसानों की एकता और संयुक्त मोर्चे के प्रश्न पर कम्यूनिस्टों की जड़ता के कारण हमारे सब तर्क विफल हो गये तो हमने उन्हें पूरी आज़ादी देदी। इसलिये उनके दबाव से हमने यह स्वीकार कर लिया कि किसान-कांग्रेस केवल नीची और मध्य वित्त श्रेणी वाले किसानों के लिये ही काम करेगी। किन्तु जब ये कम्यूनिस्ट गांवों में गये तो इन्होंने देखा कि किसान वर्ग को विभाजित करने की इनकी नीति से गांव वाले इनसे बहुत असंतुष्ट थे इसलिये दूसरे वर्ष वे इस बात पर उत्सुकता पूर्वक तैयार हो गये कि विधान में परिवर्तन करके किसानों के विभाजन की नीति त्याग दी जाय।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय मोर्चे की एकता से भी अधिक आवश्यक किसान मोर्चे की एकता है। निस्संदेह राष्ट्रीय क्रान्तिकारी मोर्चे का स्तम्भ है—किसान मजदूर मोर्चे की एकता।

ज़मींदारों के विरुद्ध किसानों के अनेक सत्याग्रहों का हमें अनुभव है। हर जगह पहले हम किसान-सभा के लिये अधिकाधिक मेम्बर बनाते थे फिर किसानों की कम से कम मांगों को तैयार करके उसका विस्तृत प्रचार करते और किसानों में जागृति लाते थे और इससे किसानों का एक संयुक्त मोर्चा तयार हो जाता था। हमारी सारी कोशिशों के बावजूद प्रायः कुछ अवसर वादी किसान शत्रु से मिल जाते थे। किन्तु सच्चे प्रयत्न से किसानों को नैतिक शक्ति बढ़ती थी।

यदि हम किसान मोर्चे पर कम्यूनिस्टों की नीति का अनुसरण करेंगे तो लेनिन और स्तालिन की किसान-विरोधी नीति के कारण हम कहीं भी सफल न हो सकेंगे।

कम्यूनिस्ट यह कह सकते हैं कि वे किसानों में फूट नहीं डालना चाहते वरन् अधिकाधिक ग़रीब किसानों को संगठन में लाना चाहते हैं। इसके लिये यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज धनी और मध्यम-वर्ग के किसान केवल सभा का शोषण करने के लिये ही किसान संगठन में आये हैं। हमें भय है कि कम्यूनिस्ट उपनिवेशों में किसानों का स्वतन्त्र विकास नहीं होने देंगे और उसे जीवित जाग्रत संस्था के रूप में नहीं उठने देंगे।

हमारा यह विचार है कि सभी वर्ग के किसानों को मिलकर विश्व के पूंजीवाद का सामना करना चाहिये।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पाना तो हमारा आरम्भिक और तत्कालिक उद्देश्य है। इससे हमारे सच्चे क्रान्तिकारी संघर्ष का रास्ता साफ़ होता है और हम संसार के तथा औपनिपेशिक देशों के पूँजीवाद को ख़तम कर सकते हैं।

संसार के अतिरिक्त धन का अधिक हिस्सा हमारे किसानों को तभी मिल सकता है जब हम किसानों का संयुक्त मोर्चा संगठित कर सकें और तभी हम किसानों के धन को व्यवसायियों, नगरवासियों

और पूँजीपतियों के हाथ में जाने से रोक सकते हैं। यदि किसानों में फूट हो गई तो उपनिवेशों के पूंजीवादी कुछ को अपना साथी बना लेंगे और उनके विरुद्ध हमारी लड़ाई खत्म हो जायगी। उसी तरह सर्वहारा वर्ग भी कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में अपना अधिनायकत्व क़ायम कर सकता है। ज़मीदार भी पूंजपतियों का साथ दे सकते हैं। व्यापारी और शहरीवर्ग मशीनों के बावजूद भी किसानों से और अधिक काम लेकर अपने लिये अधिक लाभ कमा सकता है। यदि किसानों में फूट पड़ गई तो आर्थिक या राजनैतिक क्षेत्र में किसानों का कोई सच्चा लाभ नहीं हो सकता, उनकी किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं हो सकती। यदि किसान यह चाहते हैं कि वे भविष्य में राष्ट्रीय सरकार को सहयोगी और सामूहिक कृषि तथा अन्न की रक्षा के वैज्ञानिक प्रयत्नों को चलाने के लिये वाध्य करना चाहते हैं तो एकता बहुत ही आवश्यक है। यदि किसान चाहते हैं कि संसार के और कृषिप्रधान देश फ़सलों की उन्नति, और बिक्री आदि की अन्तराष्ट्रीय योजना बनायें और व्यापारिक देशों को फ़सलों का उचित मूल्य देने के लिये वाध्य करें तो किसानों की एकता अनिवार्य है।

परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम धनी किसानों द्वारा ग़रीब किसानों का शोषण पसन्द करते हैं, हम गैरहाज़िर ज़मींदारी का भी समर्थन नहीं करते हमभी यह चाहते हैं कि ऐसे आराज़ी क़ानून पास हों और इन्तज़ाम हो कि धनी किसान ग़रीबों का शोषण न करने पावें। हम इस बात के लिये उत्सुक हैं कि वे तमाम मध्यम श्रेणी के किसान, जिनकी आराज़ी उनकी आवश्यकता से अधिक नहीं है वे बिना किसी कठिनाई के अपनी भूमि पर खेती करने पावेंगे, बशर्ते वे फ़सल के योजना, खाद और बिक्री के सहयोगी प्रयत्नों के सम्बन्ध में जारी किये हुये राष्ट्रीय आदेशों का पालन करते हैं। वे सहयोगी कृषि में आने या उससे अलग रहने के लिये स्वतंत्र होंगे।

बिना भूमि के या थोड़ी भूमि वाले गरीब किसानों के लिये यह क़ानून होना चाहिये कि उनको अधिक से अधिक भूमि मिले और क़ब्जे में न आई हुई भूमि उनके लिये सुरक्षित रक्खी जाय जिसमें वे सहयोगी आधार पर खेती कर सकें और उन्हें रोजी तथा आमदनी की एक सुदृढ़ स्थिति प्राप्त हो सके।

हमें यह भी कहना है कि यह किसान आन्दोलन भूमिहीन मज़दूरों के आन्दोलन के साथ साथ चल सकता है और इन संघों से भूमि हीन किसानों की स्थिति का प्रकाश होता है। इन दोनों वर्गों में परस्पर समझौता हो सकता है। स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर सरकार का यह पहला कर्तव्य होगा कि भूमि हीन मज़दूरों के काम के अनुसार कमसे कम वेतन तय कर दिया जाय। और कृषि की उपज की सामान्य दर तय कर दी जाय।

किसानों के संयुक्त मोर्चे की पूरी आवश्यकता के अनुभव के कारण ही हम किसानों में फूट डालने वाली कम्यूनिस्टों की नीति का विरोध कर रहे हैं। जिस तरह कुशल कारीगरों और साधारण मज़दूरों में स्वार्थों का संघर्ष सम्भव है या निर्यात और आयात वाले देशों के मज़दूरों के स्वार्थ एक से नहीं हैं, उसी प्रकार भूमि वाले किसानों और भूमि हीन मज़दूरों के बीच भी स्वार्थ का संघर्ष हो सकता है, परन्तु इसके बावजूद उनकी एकता क़ायम रह सकती है।

दोनों दशाओं में उनके अन्त विरोध सरलता से सुलझाये जा सकते हैं और यह कार्य इतनी सुगमता से हो सकता है कि इन वर्गों के संयुक्त मोर्चे पर कोई असर न पड़े। कम्यूनिस्टों की किसान विरोधी नीति बिलकुल ग़लत है। इसलिये प्रत्येक देश भक्त का यह कर्तव्य है कि वह किसानों की एकता को अक्षुण्ण रक्खे।

किसानों की स्वयं सेवक सेना बनाइये

हम इस बात की आवश्यकता महसूस करते हैं कि किसानों की

सुसंगठित और शिक्षित स्वयंसेवक सेना होनी चाहिये। उनकी ज़रूरत न केवल शोषकों के अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने के लिये वरन् किसान-विरोधी कम्यूनिस्टों तथा दूसरे लोगों से आत्मरक्षा के लिये भी है। बिना किसान स्वयंसेवकों के किसानों का अच्छा संगठन भी नहीं हो सकता। व्यायाम जिम्नास्टिक और अन्य देशी खेलों का अभ्यास कराया जाना चाहिये। किसान संगठनों की तरह व्यायाम संघों की भी अखिल भारतीय योजना होनी चाहिये। इन स्वयंसेवक संगठनों को क़ौमी सेवादल के संगठन से भी मिला सकते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि किसान कभी सोते न पाये जांय। यदि किसान वर्ग चेतनापूर्ण संगठन नहीं करते और स्वयंसेवक दल नहीं खड़ा करते तो उनकी शक्ति और सत्ता बिलकुल व्यर्थ हो जायगी।

अध्याय १०

उपसंहार

इसलिये यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि कम्यूनिस्टों द्वारा नियंत्रित यह संगठन किसानों के सच्चे हितों का प्रतिनिधित्व कभी नहीं कर सकता। और इसके नाम 'किसान सभा' का अर्थ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के हितों के प्रति विश्वासघात है। किसान सभा पूर्णरूप से कम्यूनिस्टों के आधीन हो गई है। पकल ने अपने गश्ती पत्र में अगस्त सन् १६४२ के पहले ही किसान-सभा को युद्ध समर्थक और अपने मित्र-संगठनों में सम्मिलित किया था इस बात को जानकर किसका सिर लज्जा से नहीं झुक जायगा? कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने को ऐसी किसान सभा के सम्पर्क में रक्खे जो अपनी देशभक्ति भावना को भूलकर इस प्रकार पतित हो गई कि किसानों से अनुरोध किया वे अपने को राष्ट्र की आज़ादी की लड़ाई से भी अलग कर लें और अपने को हर एक तोड़ फोड़ करने वाले से भी अलग करें जिससे किसान सभा के भीतर कम्यूनिस्ट-विरोधी व्यक्तिओं को आसानी से पुलिस की लाठी गोली और जेल का शिकार बना दें!

कांग्रेसवादी किसानों ने यह निश्चय उचित ही किया है कि वे किसान सभा के नाम को उड़ा दें और अधिक उत्साह पूर्ण और राष्ट्रीय पहले नाम 'किसान-कांग्रेस' को अपनावें । यह नाम राष्ट्रीय पक्ष और राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति हमारी वफ़ादरी का ज्वलत प्रमाण है और यह राष्ट्रीय कांग्रेस ही हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय संघर्ष और क्रान्तिकारी भावनाओं तथा त्याग का जीता जागता प्रतीक है। इस प्रेरणापूर्ण नाम से किसान-कांग्रेस का पहला अधिवेशन लखनऊ में हुआ। इसके दूसरे अधिवेशन में फ़ैज़पुर में श्रीरंगा जी इसके सभापति हुये और आपने कांग्रेस के प्रति वफ़ादारी की मांग की। किसान कांग्रेस के सभापति पद से फैजपुर किसान कांग्रे ने गांधीजी को सर्वप्रथम किसान राजनीतिज्ञ और किसान आन्दोलन का निर्माता घोषित किया।

यह बिलकुल स्वभाविक है कि सभी सच्चे किसान—हितैषी, जिन्हें हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता संग्राम में विश्वास है।

जो सन् १९४२–४४ के महान् राष्ट्रीय सङ्कट में देश की राष्ट्रीयता के प्रति वफ़ादार रहे हैं, जिन्होंने भारत माता के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने में किसानों को सहायता पहुँचाई है, जो किसी एक वर्ग की तानाशाही में नहीं वरन् किसान मजदूर प्रजा राज में विश्वास करते हैं, वे अब से अपने को किसान कांग्रेसवादी कहेंगे, किसान सभावादी नहीं।

यह भी उचित ही है कि इन्होंने इस परिवर्तन का आरम्भ सन् १९४२ में ही किया और अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का केन्द्रीय रूप बनाया तथा दक्षिण के छः किसान संगठनों को अपना प्रमुख सहा-यक बनाया।

हमें इस बात का भी पूर्ण विश्वास है और हम आशा करते हैं कि किसान मोर्चे पर कम्यूनिस्टों की इन चालों के अध्ययन से सभी किसान वादी राष्ट्रीय विचार वालों और सभी राष्ट्रीयतावादी किसानों को दृढ़

विश्वास हो जायगा कि किसी भी कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य को किसान आन्दोलन में कोई स्थान नहीं। जो कम्यूनिस्ट अपनी बाइबिल और चार्टे का अनुसरण करता है अर्थात् जो भी कट्टर कम्यूनिस्ट है वह एक ही साथ किसानों के प्रति और सर्वहारा के अधिनायकत्व के प्रति वफ़ादार नहीं हो सकता। वह एक ही साथ मातृभूमि भारत के राष्ट्रीय पक्ष और अपने पितृदेश रूस के हितों का समर्थन नहीं कर सकता। वह भारतीय राष्ट्रीयता और सन् ४४ की रूसी राष्ट्रीयता का, हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय नेतृत्व और सोवियत रूस के नेतृत्व का साथ साथ अनुसरण नहीं कर सकता। कम्यूनिस्ट दो के प्रति वफ़ादार नहीं हो सकता। उसकी तो सारी अवस्था अपने पितृदेश रूस के प्रति है। इसलिये हमें पूर्ण विश्वास है कि किसान कांग्रेस में उसके लिये कोई स्थान नहीं। कांग्रेसवादी किसान, कांग्रेस नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय कांग्रेस की शपथ लेता है। वह विश्वास करता है कि किसानों का उतना ही महान और स्वतन्त्र वर्ग है जितना सर्वहारा का। और उन्हें स्वतन्त्र और समाजवादी भारत के शासन में सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग होने का पूर्ण अधिकार है और वे पूँजीवाद या सम्राज्यवाद की तानाशाही को कौन कहे स्वयं श्रमिकों में से भी किसी वर्ग विशेष की तानाशाही को कभी भी स्वीकार करेंगे।

हम यह कैसे भूल सकते हैं कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पहले उपनिवेशों की किसान और कारीगर जनता पूँजीवाद को क्रान्तिकारी रूप में कभी नहीं मिटा सकती। पहले राजनैतिक साम्राज्य वाद को हटाकर ही आर्थिक साम्राज्य वाद नष्ट किया जा सकता है। और समाजवादी पुनर्निर्माण के पहले पूर्णतः आरम्भ करे दोनों प्रकार के साम्राज्यवाद को नष्ट करना अनिवार्य होगा।

पर ज्योंहीं राष्ट्रीय कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के सबसे भयङ्कर सङ्कट काल में सबसे बड़े साम्राज्य विरोधी संघर्ष का निश्चय किया त्योंही अँग्रेजी शासन ने हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता पर आग बरसाना शुरू किया

हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी ने जनता को उसी प्रकार धोखा दिया जैसे १६०५ की रूसी क्रान्ति में प्लेखोनोव ने।

देखिये ऐसी ही परिस्थितियों में १८७०-७२ की फ्राँसीसी राज्य-क्रान्ति में मार्क्स ने क्या किया था:—

(लेनिन लिखित राज्य और क्रान्ति)

पेरिस कम्यून के कुछ पहले मार्क्स ने पेरिस के मजदूरों को चेतावनी दी थी कि सरकार को पलट देने का प्रयत्न निराशाजन्य भयङ्कर मूर्खता होगी। किन्तु मार्च १८७१ में मजदूरों के ऊपर एक बड़ा युद्ध लाद दिया गया और इसकी चुनौती स्वीकार करने के लिये मज़दूर तैयार हो गये। जब विद्रोह एक स्थिर सत्य बन गया तो भविष्य की आशंकाओं के बावजूद मार्क्स ने इस सर्वहारा की क्रान्ति का बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अभिनन्दन किया। किन्तु १६४२ के विद्रोह में भारतीय कम्यूनिस्टों का दृष्टिकोण कितना मार्क्स-विरोधी था। लेनिन ने स्वयं ऐसी परिस्थितियों के लिये उत्तर दिया है उन्होंने कहा है, "मार्क्स ने केवल शान जताने के लिये एक असामयिक आन्दोलन का विरोध नहीं किया मार्क्स ने कम्यूनिस्टों के कार्य को आसमान ढहा देने का सा साहसिक कार्य बताया। उन्होंने इसमें विशाल पैमाने पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रयोग देखा—यह एक सक्रिय क़दम था जो सैकड़ों वादविवादों और कार्यक्रमों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। किन्तु सन् १६४२ में भारतीय कम्यूनिस्टों ने ठीक प्लेखोनोव का दृष्टिकोण ग्रहण किया और कहा, "तुम्हें हथियार नहीं उठाना चाहिये था।" परन्तु प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दुस्तान की जनता अपने ही राष्ट्रीय और वर्गहित के विश्वासघातियों के पंजे में नहीं आ सकी।

इन घटनाओं के अनुसार हिन्दुस्तान के किसानों को यह निर्णय करना है कि क्या वे अपने भाग्य एवं भविष्य को उन कम्यूनिस्टों के हाथ में सौंपें या नहीं जिनका मुख्य उद्देश्य सभी श्रमिकों को एक वर्ग

के आधीन करना है और जिनके लिये सर्वहारा की तानाशाही से भिन्न समाजवाद की कल्पना ही नहीं हो सकती।

सारे देश में किसान मोर्चे पर ६ वर्ष तक कम्यूनिस्टों का पूर्ण सहयोग करके हमें विश्वास हो गया है कि सर्वहारा के अधिनायकत्व के उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन करना असम्भव है। और इस बीच हमने उन्हें पूरा सहयोग दिया है कि वे किसान आन्दोलन में महत्वपूर्ण भाग लें और किसानों की सेवा करने या उनके अध्ययन करने का उन्हें पूरा अवसर देने में हमने कभी कमी नहीं की है। फिर भी हमें पूर्ण विश्वास है कि उनमे किसानों के सच्चे हितों के लिये कार्य करने की कभी भी आशा नहीं की जा सकती।

यदि किसानों ने इस किसान-विरोधी, कारीगर-विरोधी, ग्राम-विरोधी और अराष्ट्रीय पार्टी और उसकी नीति तथा उसके द्वारा संचालित किसान सभाओं का अनुसरण किया तो वे अपना ही विनाश बुलायेंगे और पूँजीवाद या और भयङ्कर बुराइयों के सदा के लिये शिकार हो जायँगे।